Regd. No. 58414/94

स्वामी रामानन्द जी द्वारा संचालित

हमारी साधना

त्रैमासिक

वर्ष 29 • अंक 4 • अक्तूबर-दिसम्बर 2022

मूल्य रु. 25/-

श्रीगुर पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिब्य दृष्टि हियँ होती॥

करुणामयी सुमित्रा माँ

हमारी साधना

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।।
न त्वहं कामये राज्यम्, न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां, प्राणिनामार्ति नाशनम्।।

वर्ष : 29 अक्तूबर-दिसम्बर 2022 अंक : 4

भजन

गुरु की सुधि करि हिय भरि आयो।
निसिदिन ठोकर खात जगत में भटकत चित उकतायो।
लह्यों न कतहुं सांति सुख सपनेहुं उरदुख दुसह समायो।।
ऐसे विषम समय में कर गहि हिय सौं हरषि लगायो।
सरन राखि अपनाय प्रेम सों सत पथ मोहिं दिखायो।।
मैं मतिमंद अधम अस निकस्यों तऊ न कछु करि पायो।
मनमानी करि सदा कुमति बस दुरलभ जनम नसायो।।
रामसरन गुनि अपनि मूढ़ता मन में अति पछितायो।
कहा होति अब हाथ मले ते अंत समय जब आयो।।

भजन संख्या 4 - स्व. श्री सूर्यप्रसाद शुक्ल जी 'रामसरन'

प्रकाशक
साधना परिवार
स्वामी रामानन्द साधना धाम,
संन्यास रोड, कनखल,
हरिद्वार-249408
फोनः 01334-311821
मोबाइलः 08273494285

सम्पादिका
श्रीमती रमन सेखड़ी
995, शिवाजी स्ट्रीट,
आर्य समाज रोड
करोल बाग,
नई दिल्ली-110005
मोबाइलः 09711499298

उप-सम्पादक
श्री रमेश चन्द्र गुप्त 'विनीत'
1018, महागुन मैंशन-1,
इन्दिरापुरम,
गाजियाबाद-201014
ई-मेलः rcgupta1018@gmail.com
मोबाइलः 09818385001

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	रचयिता	पृ.सं.
1.	चित्र – करुणामयी सुमित्रा माँ		2
2.	भजन	स्व. श्री सूर्यप्रसाद शुक्ल जी 'रामसरन'	3
3.	सम्पादकीय		5
4.	सूचना एवं अपील		6
5.	राम जपते रहो काम करते रहो	संकलित	7
6.	तीन पहर तो बीत गये		7
7.	भजन	मीरा गुप्ता	8
8.	जगत में कोई नहिं तेरा रे	संकलित	8
9.	कोउ न अपन लखाय गुरु बिन	श्रीमती हर्ष कुमारी शर्मा	8
10.	गीता विमर्श – श्रीमद्भगवद्गीता पंचमोऽध्याय (गतांक से आगे)	स्वामी रामानन्द जी	9–12
11.	रावण की तपस्या से द्रवित होने पर ब्रह्मा जी का वरदान		12
12.	गुरु वाणी		13
13.	Letters to Seekers — Letter No. 6		14–16
14.	भगवान क्या हैं, कैसे हैं और कैसे जाने जा सकते हैं	श्री हरि प्रकाश सिंह चौहान	17–18
15.	पुनर्जन्म न विद्यते	रमेश चन्द्र गुप्त 'विनीत'	19–21
16.	विचार करो क्या चाहिये	मीरा गुप्ता	22–23
17.	शोक समाचार		23
18.	आत्मा की खोज ही गीता है	श्री ओमप्रकाश पोद्दार जी	24–27
19.	गुरु की महिमा	श्रीमती रमन सेखड़ी	28–30
20.	आदर्श-जीवन-निर्माण	स्वामी रामानन्द जी	30
21.	Rising beyond Ego	Dinesh Bahl	31–32
22.	जहाँ ले चलोगे वहीं मैं चलूँगा	सुशीला जायसवाल	32
23.	कृपा की जो होती न आदत तुम्हारी	सुशीला जायसवाल	32
24.	पूज्य साहू जी का जीवन चरित्र - प्रस्तावना व प्रथम भाग	अनिल चन्द्र मित्तल	33–34
25.	वार्षिक शिविर-2022 कानपुर (15 से 18 अक्तूबर 2022) - प्रवचन सार		35–39
26.	दानदाताओं की सूची		40–41
27.	दिसम्बर 2022 में साधना-धाम में होने वाले कार्यक्रम		42
28.	दिगोली धाम में भूमि पूजन के चित्र		43
29.	पूज्य गुरुदेव का जन्म दिवस समारोह एवं शिविर - निमन्त्रण		44

Printed and Published by Shri Dinesh Bahl for and on behalf of Swami Ramanand Sadhna Pariwar, Sadhna Dham, Sanyasa Road, KANKHAL-Haridwar (Uttarakhand) and printed at Rakmo Press Pvt. Ltd., C-59, Okhla Industrial Area Phase-I, New Delhi-110020.

सम्पादकीय

सभी साधक भाई-बहनों को सम्पादक-मण्डल का प्रेम भरा राम-राम, अभिनन्दन!

गुरुदेव महाराज ने हमारी साधना का उद्देश्य सेवा, प्रेम और समर्पण निर्धारित किया है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी रामचरितमानस में लिखा ही है –

सुनहु विभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती॥

जो निस्वार्थ भाव से जन सेवा करते हैं उन्हीं का जीवन सफल है। ऐसी ही एक सेविका थीं हमारी वरिष्ठ साधिका श्रीमती विनोद शर्मा जो 84 वर्ष की अवस्था में अपनी जीवन यात्रा पूर्ण करके गुरु चरणों में लीन हो गईं। इन्होंने कई वर्षों तक 'हमारी साधना' पत्रिका की उप-सम्पादिका के रूप में अपनी सेवा प्रदान की। इनके पिता श्री साँई दास ऋषि जी का भी साधना धाम, हरिद्वार के निर्माण में विशिष्ट योगदान रहा था। उन्होंने खुले मैदान में खड़े होकर सर्दी, गर्मी, बरसात के थपेड़े सहते हुए अपनी उपस्थिति में इस विशाल भवन का निर्माण करने में अमूल्य योगदान दिया, जिसके फलस्वरूप हम साधकगण आज सुविधापूर्वक हरिद्वार में आकर शिविर लगा पाते हैं। ऐसे साधक दीर्घकाल तक अपनी स्मृतियों के माध्यम से जीवित रहते हैं। गुरुदेव उनको अपने चरणों में स्थान दें।

उधर दिगोली तपस्थली में भोजनालय के निर्माण कार्य में आशातीत सफलता प्राप्त हुई है। साधना परिवार के अध्यक्ष श्री विष्णु कुमार जी गोयल की अगुवाई में चल रहे इस कार्य की प्रगति समय-समय पर साधकों को सूचित की जाती रही है। साधक भाई-बहनों ने दिल खोलकर आर्थिक सहयोग भी दिया है, जिसकी जानकारी पत्रिका में दी गई सूची से मिल सकती है। आशा है यह सहयोग इसी प्रकार मिलता रहेगा।

पाठकों से नम्र निवेदन है कि पत्रिका के सम्पादन में जो त्रुटियाँ रह गई हों उनको क्षमा करते हुए सुधार के लिये सुझाव व अपनी मौलिक कृतियाँ (लेख, कवितायें व भजन) प्रेषित करते रहें।

पत्रिका के लिये भजन, लेख आदि रचनाएँ मौलिक (स्वरचित) हों तो उत्तम है। यदि कहीं से लिये गये हैं तो संकलनकर्ता लिखकर अपना नाम लिखें। लेख आदि पूज्य गुरुदेव की साधना पद्धति से मेल खाते हुए होने चाहिये।

आगामी अंकों के लिये साधकगण कृपया अपने भजन, कवितायें व लेख इत्यादि, पत्रिका की सम्पादिका अथवा उप-सम्पादक के पते पर डाक द्वारा अथवा ई-मेल info.sadhnaparivar@gmail.com या rcgupta1018@gmail.com पर प्रेषित करें।

सूचना एवं अपील

अत्यन्त हर्ष का विषय है कि गुरुदेव जी महाराज की असीम कृपा से दिगोली धाम के विस्तार की योजना का मूर्त रूप अब सामने आना शुरु हो गया है।

विस्तार योजना के प्रथम चरण में कुटिया के प्रथम तल (Ist Floor) पर एक 42'x21' क्षेत्रफल का रसोईघर एवं भोजनालय बनाना है जिसकी लागत लगभग 19 लाख रुपये आयेगी। इसका निर्माण आरम्भ करने हेतु भूमि पूजन के लिये दिनांक 9 सितम्बर 2022 को अध्यक्ष महोदय सहित निम्नलिखित साधक उपस्थित रहे जिन्होंने विधि विधान से भूमि-पूजन सम्पन्न कराया :–

1. श्री विष्णु कुमार गोयल (अध्यक्ष)
2. श्री अनिल कुमार मित्तल (उपाध्यक्ष)
3. श्री संजय सेखड़ी
4. श्री पुरन्दर तिवारी
5. वास्तुकार (Architect) श्री अर्जुन सचदेव

लागत का अनुमान भी ठेकेदार की उपस्थिति में इन्हीं पदाधिकारियों द्वारा तय किया गया।

निर्माण कार्य में अगली योजना सत्संग भवन का विस्तार करने की है।

इन कार्यों में जो खर्च आयेगा उसकी पूर्ति के लिये सभी साधकों से सहयोग की अपेक्षा है। अतः सभी से निवेदन है कि इस पुण्य कार्य में सभी साधक सहभागी बनें और अपनी सामर्थ्यानुसार सहयोग दें।

इस विषय में एक लाख या इससे अधिक की राशि के दानदाताओं के नाम सामूहिक पत्थर पर लिखवाने का निर्णय कार्यकारिणी की दिनांक 22-23 जुलाई की बैठक में लिया जा चुका है। किन्तु सहयोग राशि कितनी भी अल्प क्यों न हो उसका भी विशेष महत्व होता है।

राम जपते रहो काम करते रहो

राम जपते रहो काम करते रहो
वक्त जीवन का यूँ ही निकल जायेगा।
गर लगन सच्ची भगवन से लग जायेगी
तेरे जीवन का नक्शा बदल जायगा॥

लाख चौरासी भ्रमण किया दुःख सहन
पाया मुशकिल से तूने ये मानुष का तन।
राह चलते चलो कर के सीधी नज़र
पैर नाजुक हैं नीचे फिसल जायेगा॥
राम जपते रहो काम करते रहो....

कौल तूने किया मैं करूँगा वफ़ा
पर गया भूल कुछ भी कमाया न पा।
हो के मस्ती में तू मूल-धन खा गया
आखिरी में तेरा सिर कुचल जायेगा॥
राम जपते रहो काम करते रहो....

खैर बीती तजो अब सँभालो ज़रा
प्रेम गदगद हो आँसू निकालो ज़रा।
हो दया पात्र हरि का भरो नीर से
भरते-भरते किसी दिन छलक जायेगा॥
राम जपते रहो काम करते रहो....

छोड़कर छल कपट मोह माया जतन
लौ प्रभु से लगा हो प्रभु की शरण।
मोम सा है ज़िगर इन दया सिन्धु का
दृष्टि पड़ते ही फौरन पिघल जायगा॥

राम जपते रहो काम करते रहो
वक्त जीवन का यूँ ही निकल जायगा।
गर लगन सच्ची भगवन से लग जायेगी
तेरे जीवन का नक्शा बदल जायगा॥

– संकलित

तीन पहर तो बीत गये

तीन पहर तो बीत गये,
बस एक पहर ही बाकी है।
जीवन हाथों से फिसल गया,
बस खाली मुट्ठी बाकी है।

सब कुछ पाया इस जीवन में,
फिर भी इच्छाएँ बाकी हैं।
दुनिया से हमने क्या पाया,
यह लेखा-जोखा बहुत हुआ,
'इस जग ने हमसे क्या पाया,
बस ये गणनाएँ बाकी हैं।'

इस भाग-दौड़ की दुनिया में
हमको इक पल का होश नहीं,
वैसे तो जीवन सुखमय है,
पर फिर भी क्यों सन्तोष नहीं!

क्या यूं ही जीवन बीतेगा,
क्या यूं ही सांसें बंद होंगी?
औरों की पीड़ा देख समझ
कब अपनी आंखें नम होंगी?
मन के अन्तर में कहाँ छिपे
इस प्रश्न का उत्तर बाकी है।

मेरी खुशियां, मेरे सपने
मेरे बच्चे, मेरे अपने
यह करते-करते शाम हुई
इससे पहले तम छा जाए
इससे पहले कि शाम ढले

कुछ दूर परायी बस्ती में
इक दीप जलाना बाकी है।
तीन पहर तो बीत गये,
बस एक पहर ही बाकी है।
जीवन हाथों से फिसल गया,
बस खाली मुट्ठी बाकी है।

भजन

हृदय सदन में नाम के हीरे बिछाओ तो,
गुरु को हृदय सदन में बुलाओ तो।
वहाँ राम नज़र आएँगे, गुरु साकार नज़र आएँगे।

अश्रु बिन्दुओं से स्नान कराओ तो,
करुण पुकार लगाओ तो।
वहाँ राम नज़र आएँगे, गुरु साकार नज़र आएँगे।

भाव सिन्धु में मन को स्नान कराओ तो,
गुरु चरणों में प्रेम पुकार लगाओ तो।
वहाँ राम नज़र आएँगे, गुरु साकार नज़र आएँगे।

अन्तर्मन में निर्मलता के दीप जलाओ तो
नाम की ध्वनि लगाओ तो।
वहाँ राम नज़र आएँगे, गुरु साकार नज़र आएँगे।

गुरु चरणों में नाम की मणियाँ सजाओ तो।
गुरु प्रेम के गुण गाओ तो।
वहाँ राम नज़र आएँगे, गुरु साकार नज़र आएँगे।

– मीरा गुप्ता

जगत में कोई नहिं तेरा रे

जगत में कोई नहिं तेरा रे।
छोड़ वृथा अभिमान त्याग दे मेरा मेरा रे॥
जगत में.....

काल-करम बस जग सराय बिच कीन्हा डेरा रे।
इस सराय में सभी मुसाफिर रैन बसेरा रे॥
जगत में.....

जिस तन को तू सदा सँवारे साँझ-सवेरा रे।
इक दिन मरघट पड़े भस्म का होकर ढेरा रे॥
जगत में.....

मात-पिता भ्राता सुत बाँधव नारी चेरा रे।
अन्त न होय सहाय काल जब देवे घेरा रे॥
जगत में.....

जग का सारा भोग सदा कारण दुःख केरा रे।
भज मन हरि का नाम पार हो भव-जल बेरा रे॥
जगत में.....

दीन दयालु भक्त-वत्सल हरि मालिक तेरा रे।
दीन होय उनके चरणों में कर ले डेरा रे॥
जगत में.....

– संकलित

कोउ न अपन लखाय गुरु बिन

कोउ न अपन लखाय गुरु बिन।
सब रहे मोहि भरमाय गुरु बिन॥
सकल सनेही स्वजन, आदि जे।
सब रहे मोहि भरमाय गुरु बिन॥
काम क्रोध मद लोभ मोहि अरि।
तन मन में रहे छाय गुरु बिन॥
विषय भोग में जाय रह्यो है।
व्यर्थ हिं जनम अमोल गुरु बिन॥
इत उत निरखहुँ गुरु नहिं आये।
हर्ष रही अकुलाय गुरु बिन॥
भवसागर में बूढ़ि रही हौं।
कौन लगावै पार गुरु बिन॥

– श्रीमती हर्ष कुमारी शर्मा

गीता विमर्श

श्रीमद्भगवद्गीता पंचमोऽध्याय

(गतांक से आगे)

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये॥11॥

'योगी लोग शरीर से, मन, बुद्धि और केवल इन्द्रियों से भी कर्म करते हैं, आसक्ति छोड़कर, आत्मशुद्धि के लिए'॥ 11 ॥

'योगी लोग कर्म करते हैं'। योगी – योग के रास्ते पर चलने वाले, कर्म-योग-मार्ग के साधक। यह शब्द सिद्ध-योगी के लिये भी बरता जा सकता है, परन्तु यहाँ तो साधक के लिये ही बरता गया है।

सांसारिक व्यक्ति जिसमें अभी मार्ग के विषय में बोध नहीं, जो लौकिक सुख की लालसा से ओत-प्रोत है, कर्म करता है लौकिक सुख की इच्छा से। प्रायशः तो कामनाओं के द्वारा बांधा जाकर कर्म करवाया जाता है। उसे लगता है कि मैं पूरी तरह से स्वतन्त्र हूँ परन्तु वास्तव में ऐसा है नहीं। उसकी निम्न प्रकृति उसे बांधे हुए ले जा रही है। योगी की स्थिति भिन्न होती है। वह उस प्रकार से कर्म नहीं करता। वह ऊँचे प्रयोजन से कर्म करता है। कर्म वह भी करता है, परन्तु साधना रूप करता है। जैसे कोई जप-तप करता है अपने को पवित्र करने के लिए, वैसे ही वह सब कर्म करता है। यह है दृष्टिकोण में मौलिक भेद। जो सुख के लिये कर्म करता है, उसके लिये कर्मफल ही सबसे अधिक गणनीय है। जो कर्म में – कर्म करने में, सुख ढूँढता है वह कर्म के विषय में उसी दृष्टि से ऊँच-नीच देखेगा। सुख से होने वाला कर्म वह दौड़ कर करेगा और उसके विपरीत कर्म से भागेगा, परन्तु जो व्यक्ति अपने को पवित्र करने के लिये साधना-रूप कर्म करता है, उसे तो विचारना होता है कि वर्तमान कर्म के द्वारा मैं निर्मल हो जाऊँगा अथवा मलिन। जिस कर्म के करने से अधिक निर्मलता होगी, वह अधिक ऊँचा होगा उसकी दृष्टि से, लौकिक दृष्टि से भले ही वह निकृष्ट क्यों न हो।

किसी मैले आदमी को नहलाना, टट्टी का साफ करना, झाड़ू लगाना, दुनियादारी की दृष्टि से निकृष्ट कर्म समझे जाते हैं, परन्तु साधना की दृष्टि से ऐसा नहीं है।

क्या कर्म के बाह्य रूप पर निर्भर करता है कि हम उसके द्वारा कितने निर्मल होंगे अथवा मलिन होंगे? कर्म के बाह्य स्वरूप पर यह निर्भर नहीं करता। सेवाकार्य करके व्यक्ति अपने अहं की पुष्टि भी कर सकता है, सेवा के गर्व को जमा सकता है और अपने मान को मिटा भी सकता है। दूसरे की सहायता करके हम मदान्ध भी हो सकते हैं और प्रभु से युक्त भी हो सकते हैं। कर्म का प्रभाव हमारी मनोवृत्ति पर निर्भर करता है। अतः प्राप्त कर्म के करने का आदेश है – वही कर्म जो हमारे लिये स्वधर्म है। इस विषय में पर्याप्त चर्चा पहिले हो चुकी है।

हम काम किस लिये करते हैं, इस पर निर्भर करता है कि हमारे लिये वह कर्म कैसा होगा। योगमार्ग का साधक तो एक ही प्रयोजन से कर्म कर सकता है वह है आत्मशुद्धि।

आत्मशुद्धि है निम्न प्रकृति का संशोधन। हमारे भीतर काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि रहते हैं। विकास-क्रम में इन सभी का दूर हो जाना, रूपान्तरित हो जाना, नितान्त आवश्यक है। दिव्य प्रकृति प्रबल होनी चाहिये। निम्न प्रकृति में काम करने वाली शक्ति दिव्य प्रकृति में रूपान्तरित हो जानी आवश्यक है। समुचित मनोवृत्ति से किया गया कर्म, इस काम को सहज में कर सकता है।

वह कर्म कैसे होना चाहिये? आसक्ति-रहित। योगी सब प्रकार की आसक्ति से रहित होकर कर्म करता है। करने में जो कर्म के प्रति लगाव हो जाता है, उससे भी बचने की चेष्टा करता है।

क्या योगी केवलमात्र मन से ही कर्म करता है? नहीं, वह सर्वथा कर्म करता है। यह तो साधना है। वह सभी स्तरों पर कर्म करता है। अपनी समूची शक्ति का इस यज्ञ में उपयोग करता है, शरीर से, मन से, बुद्धि से और केवल-मात्र इन्द्रियों से भी कर्म करता है, वह सर्वथा कर्म करता है। युद्ध कर्म तो शारीरिक-कर्म ही है। प्रायशः शारीरिक-कर्म भी इस आत्म-शोधन में सहायक होता है। अतः योगी लोग उसे भी स्वीकार करते हैं। 'तुम भी आज इस युद्धकर्म को इसी रूप में स्वीकार करो। ऐसा किया जा सकता है।' भगवान् अर्जुन को मानो निर्देश करते हैं।

अर्जुन के मन में यह विचार हो सकता था कि केवल-मात्र मानसिक-कर्मों के द्वारा आत्म-शोधन होता होगा। मन तथा बुद्धि में ही तो विकार रहते हैं प्रधान रूप से। परन्तु ऐसा नहीं है। शारीरिक तथा इन्द्रियगत कर्मों के पीछे भी मन तथा बुद्धि का योग रहता है। विकार प्रकट तो इन्द्रियों और शरीर के द्वारा होते हैं। अतः इस यज्ञ में उनका योग भी ज़रूरी है।

और भी, शरीरगत कर्म अधिक प्रबल संस्कार का निर्माण करता है और उतना ही अधिक शरीरगत कर्म संस्कार के उन्मूलन में सहायक हो सकता है। वह जितना बांधता है, उतना ही खोल भी तो सकता है। शारीरिक-कर्म वास्तव में बहुत महत्त्व रखता है साधना की दृष्टि से। मनोवृत्ति तो ठीक होनी ही चाहिये।

अध्यात्ममार्ग पर आने वालों में प्रायः शारीरिक-कर्मों से अरुचि हो जाती है। एकान्त में और निकम्मा रहने की, किसी कोने में बैठकर प्रभु नाम जपने की या ध्यान करने की अधिक प्रेरणा होती है। परन्तु आत्मशोधन के लिये तो समुचित निष्ठा से किया गया शारीरिक-कर्म उतना ही आवश्यक है जितना कि जपादि। कहीं-कहीं तो शारीरिक-कर्म की उपयोगिता उससे भी अधिक होती है।

आत्मशोधन का प्रबल साधन है कर्म। देखिये 18वें अध्याय के श्लोक 45 और 46।

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते॥12॥

'युक्त हुआ कर्म फल को छोड़कर नैष्ठिकी शान्ति को प्राप्त कर लेता है। परन्तु, अयुक्त कामना के द्वारा फल में आसक्त हुआ बँध जाता है'॥12॥

युक्त का अर्थ है योग-युक्त, योग में युक्त, लगा हुआ। योग के मार्ग में जुड़ा हुआ। जो इस कर्मयोग के मार्ग पर चलने वाला है, जो ऊपर लिखे तरीके से कर्म करता है, वह इस साधना के द्वारा कर्मफल को छोड़ देता है – कर्मफल से मुक्त हो जाता है। उसके परिणामस्वरूप नैष्ठिकी – शान्ति को प्राप्त कर लेता है। 'त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्' – त्याग के पश्चात् शान्ति हो जाती है। जब तक हम भीतर कुछ भी पकड़े हुए हैं, तब तक वही हमारी अशान्ति का कारण बन जाता है। आशा-निराशा की दोला पर आरूढ़ हुए डोलने लगते हैं। भीतर की सहज शान्ति को एक तिनके से लगाव भी समाप्त कर देता है।

यह शान्ति जो इस प्रकार प्राप्त होती है, वह नैष्ठिकी होती है। नैष्ठिकी – निष्ठा वाली, जिसमें स्थिरता है, जो आती और जाती नहीं अपितु बनी रहती है। शाश्वत-शान्ति को लाभ करता है।

इसके विपरीत जो कर्म साधना के लिये नहीं करता उसकी क्या गति होती है?

वह बँध जाता है। निबध्यते-भली प्रकार से जकड़ा जाता है। कामकारेण – काम के प्रभाव से, कामना के प्रभाव से, फल में आसक्त हो जाने के कारण बँध जाता है। फल में आसक्ति क्यों होती है? फलों के लिये लालसा होती है। तृष्णा होती है कि सांसारिक वस्तुएँ प्राप्त हों। कर्म करते हैं तो उनकी प्राप्ति की सम्भावना दीखने लगती है। आसक्ति प्रकट हो जाती

है। कर्म करके फल चाहता है। संसार में लिपटता जाता है इस फलासक्ति के द्वारा। तृप्ति तो होती नहीं, इच्छायें बढ़ती चली जाती हैं। परिणाम होता है प्रकृति में बन्धन। इच्छायें व्यक्ति को प्रकृति में घसीटती हैं।

फलासक्ति तृष्णा का ही रूप है। तृष्णा तो बन्धन की जननी है ही। व्यक्ति को लाचार कर देती है।

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्॥13॥

'संयमी व्यक्ति सभी कर्मों का मन से संन्यास करके करने और करवाने से परे हुआ, नौ द्वार वाली नगरी (देह) में चैन से रहता है'॥13॥

नवें श्लोक से जिस चर्चा को आरम्भ किया था, वह यहाँ आकर समाप्त होती है। कर्मों का संन्यास मानसिक-रूप से कैसे हो सकता है? और उसका परिणाम क्या है – यही विषय है जिसकी चर्चा चल रही है। अब कहते हैं – 'मनसा संन्यस्य' मन से (ही) त्याग करके। आन्तरिक त्याग ही तो त्याग का वास्तविक रूप है। बाह्य त्याग की तो आवश्यकता ही नहीं है, और वह सम्भव भी नहीं। मन की समुचित क्रिया के द्वारा त्याग होता है। मन ही इस त्याग का साधन है। समुचित भावना से त्याग होता है। मन से ही तो कर्म प्रभु-अर्पण किया जा सकता है। वह जो नवें श्लोक में 'भगवान् में कर्मों का आधान' कहा था, उसी का उपाय बताया गया है। यह कार्य मन के द्वारा होता है। उसके लिये बाहर किसी प्रकार की चेष्टा की अथवा चेष्टा के अभाव की आवश्यकता नहीं।

इसीलिये आगे कहा **'नैव कुर्वन्न कारयन्'** 'न करता और न करवाता हुआ।' करवाना भी तो करने का ही दूसरा रूप है। करवाना भी कर्म है और उसके लिये भी उसी प्रकार से करवाने वाले पर जिम्मेवारी आती है जैसे करने से। जो इस मनसा त्याग की स्थिति को लाभ कर लेता है, वह करने-करवाने के संस्कार से रहित हो जाता है। वह व्यावहारिक-दृष्टि से करता-करवाता है परन्तु वह भीतर से कुछ नहीं करता-करवाता। निर्लिप्त रहता है। अतः बन्धन-रहित रहता है।

अर्जुन को भगवान् युद्ध करने के लिये कह रहे थे, वह स्वयं करवाने वाले बन रहे थे इस प्रकार से। परन्तु वे तो कर्म-बन्धन से फिर भी रहित रहते हैं। मानो अपनी ओर इशारा हो। 'अर्जुन तू भी तो मेरे जैसा हो सकता है।' सभी कर्मों का त्याग आवश्यक है। जो भले-भले कर्मों को ही प्रभु को सौंपने को तैय्यार है, वह भी कर्म-बन्धन से रहित नहीं होता और जो बुरे कर्मों को ही अर्पण करता है, वह भी वैसा नहीं हो सकेगा, बन्धन से रहित। जिसने सर्व कर्म समर्पण का निश्चय किया है, वही बन्धन-रहित होता है। भले कर्म भी तो बन्धन हैं और बुरे कर्म भी। कर्ममात्र बन्धन हैं। अतः कर्ममात्र का समर्पण करना होगा। ऊँची साधना की दृष्टि से ऐसा समर्पण ही व्यक्ति को आत्म-समर्पण के लिये तैय्यार कर सकता है। ऐसे समर्पण से ही मानमर्दन होता है। 'जो हम भले बुरे तो तेरे' यही भावना भक्ति की उत्कृष्ट भावना है।

साधक के लिये 'वशी' विशेषण का प्रयोग हुआ है। जिसे वशीकार हो वह वशी कहलाता है। मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों पर अधिकार रखने वाला वशी-संयमी होता है। इस समर्पण की सिद्धि के लिये संयम नितान्त आवश्यक है। जिसका मन चञ्चल है, मति अस्थिर और इन्द्रियाँ उलटे रास्ते पर ले जाती हैं, वह व्यक्ति कैसे कर सकता है सर्व-कर्म-समर्पण। सर्व-कर्म-समर्पण का अर्थ है सभी इच्छाओं की बलि देने के लिये तैय्यार रहना। सर्व-कर्म-समर्पण के लिये आवश्यक है स्थिर-समर्पण की भावना का होना। मति की स्थिरता और हृदय की निश्चलता में ही यह सम्भव हो सकता है। अतः भक्ति-मार्ग की यह सिद्धि भी संयम की मांग करती है।

इतना अवश्य अन्तर है कि यहाँ भक्ति-मार्ग में प्रभु की प्रीति संयम पैदा कर देती है। प्यार वशीकार को जागृत कर देता है। नई युवती माँ बनती है। बच्चे के लिये जगा हुआ वात्सल्य कितना त्याग और संयम

सिखा देता है। बिना उस वात्सल्य के सम्भव है क्या रात्रि की नींद को रोज-रोज खराब करना, गीले बिछौने पर सोना, मलमूत्र को साफ करना और भोजन में इतना नियन्त्रण? ठीक ऐसे ही प्रभु की लगन वशीकार की जननी हो जाती है। भक्त का मन ही बदल जाता है। इन्द्रियाँ भी प्रभु-पथ-गामिनी हो जाती हैं। मति भी भगवान् में टिक जाती है।

ऐसे संयमी साधक के लिये कहा **'नवद्वारे पुरे देही'** – 'नौ द्वारों वाली नगरी जो देह है उसमें', देही – देहधारी व्यक्ति को कहते हैं। जैसे फोर्ट कोट (किले) में रहता है, ऐसे ही संयमी व्यक्ति देहरूपी फोर्ट में सुख से रहता है। फोर्ट में निर्भयता होती है। शत्रु के आक्रमण का भय नहीं होता, ऐसे ही संयमी को काम-क्रोधादि का भय नहीं रहता। अतः वह सुख से रहता है।

सुन्दर उदाहरण है सिद्ध व्यक्ति के लिये। उसकी देह ही उसके लिये किला बन जाती है। जैसे किले के द्वार होते हैं, इसी प्रकार देह के छिद्र होते हैं। किले के स्वामी का द्वारों पर पूरा अधिकार होता है। जब चाहे उन्हें खोलता है और जब चाहे बन्द कर सकता है। इसी प्रकार से वशी व्यक्ति देहगत छिद्रों को जब चाहे बाह्य स्पर्शों से हटा सकता है।

कर्तृत्व से रहित हुआ, अपना स्वामी बना हुआ व्यक्ति इस देह में भी चैन से रहता है। यह देह उसके लिये भार नहीं रहती और न कर्म ही भार होता है। भार होना तो नासमझी का और आसक्ति का सूचक है। वह बन्धन का प्रमाण है। वह दौड़ने की गुप्त प्रवृत्ति है जो बन्धन होने पर ही सम्भव है।

भगवान् का इस कर्मफल-विधान के साथ क्या सम्बन्ध है? क्या यह उसकी रचना है जो कर्मफल का चक्र चलता है? उत्तर में कहा –

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते॥14॥

'भगवान् लोक के कर्तापन, कर्मों अथवा कर्मफल-विधान का निर्माण नहीं करते। स्वभाव ही बरतता है'॥14॥

(क्रमशः)

वाल्मीकि रामायण के अनुसार रावण की तपस्या से द्रवित होकर जब ब्रह्मा जी उसको वर देने के लिये उद्यत हो गये तो उसने अमरता का वरदान माँगा। तो ब्रह्मा जी ने उसको अपनी सामर्थ्य से बाहर बताकर असमर्थता प्रकट कर दी। उसके पश्चात् जब रावण अपने आप को सुरक्षित रखने के लिये, अपने शत्रुओं की सूची गिना रहा था तो उस समय वह मानव तथा वानर को इसमें शामिल करना भूल गया। यह भूल उसके घमण्ड की उपज थी। उसका मानना था कि अगर वह नश्वर मनुष्य तथा वानरों से भी अपने प्राणों की रक्षा का वर मांगेगा तो इससे उसकी उच्चतम शक्तियों का अपमान होगा। ब्रह्मा देवताओं से बोले कि रावण की यही भूल उसकी मृत्यु का कारण होगी।

शिक्षा – **बुद्धिमत्ता ईश्वर की ओर से दिया गया उपहार है। इसे देना न देना ईश्वर की इच्छा पर निर्भर करता है। कोई भी अपने विचारों के लिये दावा नहीं कर सकता। रावण ने घमण्ड के अभिभूत होकर बहुत बड़ी भूल की थी। इस बिन्दु पर उसकी बुद्धिमत्ता के द्वार बन्द थे।**

इसीलिये हम ईश्वर से श्रेष्ठ बुद्धि के लिये प्रार्थना करते हैं – धियो यो नः प्रचोदयात् – ईश्वर हमारी बुद्धि को श्रेष्ठ मार्ग पर चला।

गुरु वाणी

साधक के जीवन में एक घाटी तक पहुँचने तक उतार-चढ़ाव होते हैं। उसको पार करने पर रास्ता सीधा ऊपर चला जाता है। (पत्र 43)

❖ ❖ ❖

हमारे पथ में श्रीराम कृपा ही मुख्य है। भक्त भक्ति भाव से प्रभु के नाम का स्मरण और उसकी कृपा किरण की प्रतीक्षा करता है। वह कार्य जो योगी लोग तथा तपस्वी नहीं कर पाते वह उसे बिना प्रयास ही सहज में प्राप्त होता है। (पत्र 43)

❖ ❖ ❖

शरीर को शिथिल करना चाहिये और इसे तटस्थ होकर ही देखना चाहिये अर्थात् यह इच्छा न करनी चाहिये कि यह आगे बढ़े अथवा कम हो जाये, भागवती शक्ति ही इस विषय में परम नेता है। (पत्र 44)

❖ ❖ ❖

संसार में प्राणी विकास की विभिन्न सीढ़ियों पर है, इसे न भूलना चाहिये। (पत्र 45)

❖ ❖ ❖

मस्तक पर ज़ोर शान्त हो जाना ही अच्छा है। जितना आप अपने मन तथा शरीर को शान्त तथा शिथिल कर पायेंगी उतनी ही जल्दी यह ज़ोर भी शान्त हो जायेगा। किसी विशेष केन्द्र में एकाग्रता करने का प्रयत्न बिल्कुल न कीजियेगा। (पत्र 46)

❖ ❖ ❖

रात्रि को जल्दी ही सोकर प्रातः खूब जल्दी उठने का अभ्यास करें। इस प्रकार भ्रमण के लिये समय भी निकल आयेगा और भजन के लिये भी घण्टा भर मिल जाना कठिन नहीं होगा। (पत्र 47)

Letters to Seekers

Letter No. 6 : Shri Ram : Digoli, Almora
July 9 & 10, 1944

My dear .....,

'Bases of Yoga' by Sri Aurobindo, I suggest as a substitute. I hope the book will give you much needed help. Again, it is to be well masticated.

I knew that you had never taken interest in business (from your own statement), and that was why I suggested it. We have to establish a balance in extroversion and introversion. Too much of thought with little real interest in outward affairs generally leads to disbalancing of the personality. Well, if you cannot take active interest in business on account of your health, you may interest yourself really in the members of the family or anything else excepting yourself. Of course, you understand that the interest must be disinterested अनासक्त (*Anasakt*) as far as possible. In the present stage of development it will do you a lot of good physically and spiritually. I know that the family affairs are looked after by you. I am asking you only to put in more life. Let them not appear as a burden which has to be carried, but as a privilege of service, a willing offering at His feet. This little change of attitude will produce the desired effect on you. I have every hope.

I followed carefully the 'Viceroy – Gandhi' correspondence. Who can doubt the braveness of Mahatmaji. Nor have I any quarrel about his weapon of Ahinsa for it has produced a lot of awakening. As far as his principles go, they are his. I do not say that we should hate others or harm others. For me this ideal of swadharma stands much above the individual dharamas, yamas or niyamas; and swadharma is the demand of the particular circumstances from a particular individual. Hence the difference between swadharma for a Brahman and a Kshatriya. Swadharma in reality is the line of evolution for a particular individual. This is the call to duty for duty's sake. Who responds to it, for him hinsa and ahinsa cease to have any meaning. He is lifted above the plane of action and reaction, for him attachments cease, and together with them their consequences – the bondages.

To me Gita has, the clarion call for Arjun to do his duty – to fight, which he does irrespective of the consequences. This is the doctrine which can rejuvenate the nation and individuals alike. It can instill a sense of self respect and lift the individual above all attachments and fears. This is the doctrine of dignity of labour and equality of all works. Gita ethics is spiritual ethics, and its Goal the ultimate Goal which takes the individual above the relative good and evil, hence the relative pleasure and pain.

I have put in the above remarks because of their bearing on Karmayoga, the topic of the 3rd chapter of the Gita. I give below brief remarks on Sloka 34 & 35.

Sloka 34: It is a warning for those who seek to tread the path.

Attraction and repulsion are inherent in the sense organs (for objects of sensations). Some objects exert the pull so much that the whole being is thrown out of gear and one is led away by them, while others cause so much repulsion that the same thing happens in the other direction. In order to be able to do our duty we must be above both, otherwise we will be following sense objects or running away from them, rather than following swadharma – the law of our life. Without self control, we can not tread the path.

परिपन्थिनौ (*Paripanthinau*) obstacles on the way. What? The raga and dvesha, not sense organs or sense objects. Because they deviate him. RAGA for his kinsmen was standing in the way of Arjuna's performance of his duty. It is these which cloud our sense of duty in every day life. They affect not only our sense organs, they affect our hearts and our intellect.

We are not to run away from the objects of senses or objects of relations, but we have to maintain balance in their midst. A temporary withdrawal may be advisable for a short period, but only as a temporary measure. A soldier can overcome his fear only in the battlefield and so also the stallion. Similarly we have to learn balance while in their midst. All results obtained otherwise are unreliable.

To obtain self-control, we have to learn to consider the effect of our various acts, and to draw conclusions therefrom. Secondly, we are to develop the attitude of a disinterested witness to learn to see the sense organs, manas, and budhi as outside of ourselves. Watch them at their play but do not try to suppress them. Gradually they will begin to come round.

The essence of self control is balance, not asceticism.

Sloka 35: This contains the main teaching of the Gita interpreted in the light of the historical background, it simply means that the Chaturvarnya-dharma should be fulfilled, irrespective of the apparent flaws. We come upon the secret of the teaching when we question why. Why should a Kshatriya fulfil his Kshatriya-dharma even if it involves the unpleasant act of dealing death to the enemy? Because doing so will lead to his evolution. That is the law of his being, the path of his evolution determined by his past evolution in this and previous births. That again is the reason why he is born in a Kshatriya family with a heroic tradition. He needed the present experience (though we are born according to our Karmas, but the choice is so made that we go ahead smoothly in evolution while

working out our Karma).

Moreover, a Kshatriya will leave the work of a Kshatriya and take to a Brahamanic life only when he finds the latter more promising or more pleasant in its fruits, or in its performance. That again can only be when he runs after external ends, which means bondage. If a person has no attachment, if he is Sama सम (balanced), any external end cannot attract him for its own sake. e.g. 'न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते' (Gita XVIII.10) etc. To give up the line of one's evolution for external ends is to fall spiritually.

Hinsa leads to pain and Ahinsa to pleasure. Action equals reaction. If the object of one's action is to have as much physical pleasure as possible, then that would have been advisable. But that is neither possible for long, nor advisable because it is not necessarily consistent with spiritual growth. The pleasant and the good is not always the same. Hence the way is to look neither to the pleasure giving nor to its opposite, but to look for that which leads to our evolution – the Swadharma.

This is not purely individualistic or egoistic. To ignore the law of life for the transitory pleasure of another is as much degrading to oneself, as doing the same for one's pleasure. If we honour the law, we honour his life and its purpose. We expect the same from others and unseen we lift others and establish order in the society.

Society has trained a Kshatriya for a particular work, if he gives it up he is doing harm to the society as well. It is the individualistic outlook which thinks of Hinsa and Ahinsa in egoistic terms (as reacting upon himself) without regard to social needs. A hangman is as necessary for the society as a Brahmin and if all hangmen give up their profession, society would be the sufferer. The doctrine of Swadharma is thus a great socialistic institution.

I have taken up this verse in the historical background, but it puts forth a universal doctrine. Follow the law of your being, irrespective of external consequences on your self or others. That is the way to go ahead and be free from pleasure and pain, and reach the Highest. What is the law of one's being and how to discover it is an allied subject. When we are on the path of self control and have begun to aspire for something High, gradually we shall discover it.

This much is more than enough for the present.

Yours in the Lord,

Ramanand

❖ ❖ ❖

भगवान क्या हैं, कैसे हैं और कैसे जाने जा सकते हैं

भगवान क्या हैं? इसका उत्तर केवल शास्त्रोक्त, उपनिषदों, रामचरितमानस, गीता जी और श्रीमद्भागवत आदि से तथा साधक की अनुभूति के आधार पर कुछ-कुछ समझा जा सकता है। सर्वप्रथम श्रीमद्भावतार्गत् गजेन्द्र मोक्ष के इस श्लोक के अर्थ के माध्यम से भगवान क्या है को समझने की चेष्टा करें।

''वे भगवान वास्तव में न तो देवता हैं न असुर, न मनुष्य हैं न तिर्यक (मनुष्य से नीची-पशु, पक्षी आदि किसी) योनि के प्राणी हैं। न वे स्त्री हैं न पुरुष और न नपुंसक ही हैं। न वे ऐसे कोई जीव हैं, जिनका इन तीनों ही श्रेणियों में समावेश न हो सके। न वे गुण हैं न कर्म, न कार्य हैं न तो कारण ही। सबका निषेध हो जाने पर जो कुछ बचा रहता है, वही उनका स्वरूप है और वे ही सब कुछ हैं।''

गीता के 13वें अध्याय के 27वें श्लोक में भगवान क्या हैं के विषय में निम्न पंक्तियों पर विचार करें–

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति॥

''भगवान नष्ट होते हुए सम्पूर्ण प्राणियों में समरूप से स्थित रहते हैं। ऐसा देखना ही असली देखना है। अर्थात् वह सर्वशक्तिमान हैं तथा सर्वत्र व्याप्त हैं।''

गीता के 13वें अध्याय के 17वें श्लोक में कहा है –

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥

वह परमात्मा सम्पूर्ण ज्योतियों की ज्योति और अज्ञान से अत्यन्त परे कहे गये हैं। वे ज्ञानस्वरूप, जानने योग्य, ज्ञान से प्राप्त करने योग्य और सबके हृदय में विराजमान हैं।

कर्मयोगी के लिये भगवान अकर्म हैं, ज्ञानयोगी के लिये वे आत्मा हैं और भक्तयोगी के लिये परमात्मा हैं। अस्तु अकर्म, आत्मा और परमात्मा में तत्वतः कोई भेद नहीं है।

यहाँ यह जानना भी आवश्यक है कि भगवान सब जगह हाथों और पैरों वाले, सब जगह नेत्रों, सिरों और मुखों वाले तथा सब जगह कानों वाले हैं। वे संसार में सबको व्याप्त करके स्थित हैं।

गीता के 13वें अध्याय के 13वें श्लोक में कहा है –

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥

ज्ञानयोगी के लिये भगवान 'अष्टावक्र गीता' में क्या हैं? निम्नांकित पंक्तियों पर विचार करें–

''आत्मा तो साक्षी, विभु, पूर्णा, द्विज, मुक्त, चेतन, निष्क्रिय, असंग, निःस्पृह एवं शान्त है। वह भ्रम से ही संसारी मालूम पड़ता है। वस्तुतः भगवान के जन्म और कर्म दिव्य हैं। ऐसी अनुभूति होने पर ही उसे ठीक से समझा जा सकता है।''

ईशावास्योपनिषद् में शान्तिपाठ में भगवान को पूर्ण की संज्ञा दी गई है।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।
ॐ शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!

''अर्थात् ॐ वह (परब्रह्म) पूर्ण है और यह (कार्यब्रह्म) भी पूर्ण है, क्योंकि पूर्ण से पूर्ण की उत्पत्ति होती है। तथा (प्रलयकाल में) पूर्ण (कार्यब्रह्म) का पूर्णत्व लेकर (अपने में लीन करके) पूर्ण (परब्रह्म) ही बचा रहता है। त्रिविध ताप की शान्ति हो।''

अब विचारणीय बिन्दु है कि भगवान कैसे हैं? स्वयं गीता में भगवान स्पष्ट करते हैं कि वह कैसे हैं–

वह भगवान अविनाशी अमृत का आश्रय है, शाश्वत धर्म का और एकान्तिक सुख का भी आश्रय है।

वस्तुतः वह अविनाशी अमृत में निर्गुण निराकार है अर्थात ज्ञानयोगी की अनुभूति है। भगवान शाश्वत धर्म का आश्रय है यह सगुण साकार की अर्थात् भक्तियोगी की अनुभूति है और एकान्तिक सुख का आश्रय है अर्थात् ध्यान योगी और कर्मयोगी की सहज सुखानुभूति है।

अध्याय 14 का श्लोक 27 –

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥

अस्तु भगवान कैसा है? वह ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग आदि सबकी प्रतिष्ठा है।

मानसकार की भी यही घोषणा है।

अगुनहिं सगुनहिं नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव संभव खेदा।
अगुन अरूप अलख जो होई।
भगत प्रेम बस सगुन सो होई।
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे।
जल हिम उपल विलग नहिं जैसे।

वह कैसा है?

राम सच्चिदानन्द दिनेसा।
नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा।

पुनः –

राम ब्रह्म परमारथ रूपा।
अविगत अलख अनादि अनूपा।
व्यापक व्याप्य अखण्ड अनन्ता।
अखिल अमोघ शक्ति भगवंता।

पुनः गीता में भगवान स्वयं कहते हैं कि –

वह अपने एक अंश से इस सम्पूर्ण जगत को व्याप्त करके स्थित हैं। अर्थात् अनन्त ब्रह्माण्ड भगवान के किसी एक अंश में है। ऐसे हैं भगवान।

पुनः भगवान सम्पूर्ण शुभ कर्मों के भोक्ता हैं, सम्पूर्ण ईश्वरों के भी ईश्वर हैं। और जीव के सुहृद हैं।

ऐसे हैं भगवान जो अव्यक्त और अचिन्त्य हैं।

अब ऐसे भगवान को जो सर्वत्र विद्यमान हैं उन्हें कैसे जाना जाये? बस यहाँ मानसकार की अनुभूति है वही परमात्मा को जान सकता है जिसे वह जनाना चाहते हैं –

सोइ जानहि जेहि देहु जनाई।
जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।

बस क्या चाहिये भगवान की कृपा?

तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनन्दन।
जानहिं भगत भगत उर चन्दन।

गीताकार की अनुभूति भी ऐसी है। बस भगवान की शरणागति ही मात्र सहज उपाय है –

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

अर्थात् हे भरतवंशोद्भव अर्जुन! तू सर्वभाव से उस भगवान की ही शरण में चला जा। उसकी कृपा से तू परम शान्ति (संसार से सर्वथा उपरति) – को और अविनाशी परमपद को प्राप्त हो जायेगा।

ऐसा क्यों? क्योंकि जीव ईश्वर का अंश है। मानस के उत्तरकाण्ड में –

ईस्वर अंस जीव अबिनासी।
चेतन अमल सहज सुख रासी।

गीताकार का भी यही अभिमत है –

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥

बस यह विश्वास कर लो कि जीव केवल भगवान का ही अंश है, इसमें प्रकृति का अंश किंचिन्मात्र भी नहीं है। पर जीव से यही भूल होती है कि वह देह को अपना मानता है पर वास्तव में जो अपना है उस परमात्मा को अपना नहीं मानता।

इसीलिये इस सूत्र को हृदयंगम कर लो और भगवान के सान्निध्य की सुखानुभूति उन्हें जानकर कर लो।

एक भरोसो एक बल एक आश विश्वास।
एक राम घनश्याम हित चातक तुलसीदास॥

अस्तु भगवान क्या हैं? कैसे हैं? और कैसे जाने जा सकते हैं?

जाकी रही भावना जैसी।
प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।

बस यही जान लो कि भगवान भाव के भूखे हैं और उन्हें किसी की दरकार नहीं।

भगवान के जानने का सहज, सरल और सुगम उपाय है उनके नाम की सहज प्रेम से उपासना। स्नेहपूर्ण अभीप्सा से आराधना और श्रद्धा और विश्वास के अवलम्बन रूपी नाम साधना ही समस्त विश्व के मनीषियों और सद्गुरु की कृपा का प्रसाद है। इसे खुद चखो और सभी को नाम की रसनाभूति का पंचामृत चखाओ।

– श्री हरि प्रकाश सिंह चौहान

पुनर्जन्म न विद्यते

गीता में भगवान ने बताया है कि आत्मा नाशरहित, नित्य, अजन्मा और अव्यय है। जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है (अध्याय 2 श्लोक 21 और 22)।

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम्॥

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

अध्याय 2 श्लोक 27 में यह भी बता दिया कि जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु निश्चित है और जिसकी मृत्यु हुई है उसका जन्म निश्चित है।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥

अर्थात् मृत्यु शरीर की होती है, आत्मा की नहीं और आत्मा एक शरीर को त्याग कर दूसरा शरीर धारण कर लेती है। कभी-कभी मन में विचार आता है कि हमें अगला शरीर कौन सा मिलेगा – मनुष्य का या पशु आदि का। कैसा स्थान मिलेगा, कैसा परिवार मिलेगा, अगला जीवन सुखी होगा या दुःख से भरा होगा।

इन सभी प्रश्नों का उत्तर हमें गीता में मिल जाता है। अध्याय 8 के श्लोक 6 में कहा गया है कि यह जीव जिस-जिस भी भाव को स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग करता है उस-उस को ही प्राप्त होता है।

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

अध्याय 14 में इसी विषय का स्पष्टीकरण करते हुए बताया गया है कि जब यह मनुष्य सत्त्वगुण की वृद्धि में मृत्यु को प्राप्त होता है तब तो उत्तम कर्म करने वालों के निर्मल दिव्य स्वर्गादि लोकों को प्राप्त होता है, रजोगुण के बढ़ने पर मृत्यु को प्राप्त होकर कर्मों की आसक्ति वाले मनुष्यों में उत्पन्न होता है तथा तमोगुण के बढ़ने पर मरा हुआ मनुष्य कीट, पशु, आदि मूढ़योनियों में उत्पन्न होता है। अध्याय 15 श्लोक 8 में पुनः कहा गया है –

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्॥

अर्थात् वायु गन्ध के स्थान से जैसे गन्ध को ग्रहण करके ले जाती है, वैसे ही देहादि का स्वामी जीवात्मा भी जिस शरीर का त्याग करता है उससे इन मनसहित इन्द्रियों को ग्रहण करके फिर जिस शरीर को प्राप्त होता है उसमें जाता है। अगले शरीर में इन्द्रियों के माध्यम से जो वासनायें शरीर त्याग के समय शेष रह गई थीं उनको भोगता है। फिर नये कर्म करता है और जन्म-मरण के चक्र में घूमता ही रहता है।

उपरोक्त विश्लेषण से इतनी बात तो समझ में आ जाती है कि इस जन्म में यदि श्रेष्ठ कर्म किये जायें तो अगला जन्म अच्छा ही मिलेगा। तो जब मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है और उन कर्मों को करने के लिये भगवान ने साधन भी दिये हैं – शरीर दिया है, कर्मेन्द्रियाँ दी हैं, विचार करने के लिये मन दिया है, सही-गलत का निर्णय करने के

लिये बुद्धि दी है, भौतिक साधन दिये हैं तो श्रेष्ठ कर्म क्यों न किये जायें।

परन्तु श्रेष्ठ कर्म हैं कौन से? कहीं ऐसा तो नहीं कि हम नीच कर्मों को ही श्रेष्ठ समझकर उन्हीं को किये जा रहे हैं जो हमें अधोगति में ले जा रहे हैं।

इसका उत्तर भी गीता में ही मिलता है। भगवान ने बताया है कि सृष्टि को सुचारु रूप से चलाने के लिये उन्होंने समाज को चार वर्णों में विभाजित किया है – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इन चारों के कर्तव्य निर्धारित किये हुए हैं जिनके अनुसार बरतना ही सबका निज धर्म है। यहाँ उल्लेखनीय है कि निज धर्म सबका अलग होता है जो समय और परिस्थिति द्वारा निर्धारित किया जाता है। यह भी कहा गया है कि जाति का निर्धारण मनुष्य के गुण, स्वभाव, कर्म व संस्कारों के आधार पर होता है न कि जन्म के आधार पर।

ब्राह्मण के स्वाभाविक गुण हैं – शम, दम, तप, शौच, क्षमा, सरलता, वेद-शास्त्रों में श्रद्धा, अध्ययन व अध्यापन। क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं – शूरवीरता, तेज, धैर्य, चतुरता, युद्ध से न भागना, दान देना और स्वामिभाव। वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं – खेती, गौपालन, क्रय-विक्रय, वस्तुओं का उत्पादन एवं वितरण, दान देना, समाज का भरण-पोषण करना आदि और सब वर्णों की सेवा करना शूद्र का स्वाभाविक कर्म है। अध्याय 18 श्लोक 47 में बताया गया है कि अपना धर्म गुणरहित भी हो तो भी उसी का पालन करना ही मानव का कर्तव्य है।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥

इसके अतिरिक्त कुछ श्रेष्ठ कर्म ऐसे हैं जो सभी के लिये करणीय हैं। वे हैं यज्ञ, दान और तप। यज्ञ का अर्थ है त्याग। कर्मफल के त्याग को सर्वश्रेष्ठ यज्ञ कहा गया है। दान का अर्थ है सात्त्विक दान अर्थात् जहाँ जिस वस्तु की कमी हो उसी की पूर्ति अपनी सामर्थ्यानुसार करना बिना प्रत्युपकार की भावना के। तप का अर्थ है धर्म पालन के लिये कष्ट सहना।

ज्ञानियों का, गुरुजनों का, अपने से बड़ों का आदर-सत्कार, सेवा, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, प्रिय और हितकारक वचन बोलना, शान्त भाव, क्रोधित न होना, सत्य भाषण, सत्य आचरण, कपटरहित व्यवहार, नाम जप का अभ्यास, मन की प्रसन्नता, मन का निग्रह, अन्तःकरण भी पवित्रता – ये सब तप की श्रेणी में आते हैं।

अन्य करणीय कार्यों का भी गीता में विस्तृत विवरण मिलता है जैसे शुद्ध सात्त्विक भोजन करना, यथायोग्य सोना जागना, सब प्राणियों के प्रति दया का भाव, परोपकार, निन्दा न करना, सबका यथायोग्य सत्कार, विशुद्ध प्रेम, विषयों में आसक्त न होना, कोमलता, अपने में श्रेष्ठता का अभिमान न होना।

उपरोक्त सभी बातें आगामी जन्मों को सुधारने हेतु कही गई हैं। किन्तु गीता में इससे आगे की बात भी बताई गई है कि यह संसार ही दुःखों का घर है। यहाँ प्रत्येक जन्म में मनुष्य दुःख पर दुःख भोगता रहता है। पिछले कर्मों को भोगता हुआ नये कर्म भी करता रहता है और उनको भोगने के लिये फिर जन्म लेना पड़ता है। जन्मते समय और मरण के समय जो कष्ट होते हैं उनको भी सहना पड़ता है। तो जन्म-मृत्यु के जाल से निकलने के उपाय भी गीता में बताये गये हैं। अध्याय 8 के श्लोक 16 में कहा गया है कि हे अर्जुन, ब्रह्मलोकपर्यन्त सब लोक पुनरावर्ती हैं परन्तु मुझको प्राप्त होकर

पुनर्जन्म नहीं होता –

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥

कैसे प्राप्त करें भगवान को? इसके निम्नलिखित उपाय बताये गये हैं –

1. **अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।**
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

जो पुरुष अन्तकाल में भी मुझको स्मरण करता हुआ शरीर को त्यागकर जाता है वह साक्षात् मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है – इसमें कुछ भी संशय नहीं है। (गीता अध्याय 8 श्लोक 15)

2. **कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।**
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्॥

समबुद्धि से युक्त ज्ञानीजन कर्मों से उत्पन्न होने वाले फल को त्यागकर जन्मरूप बन्धन से मुक्त हो निर्विकार परम पद को प्राप्त हो जाते हैं। (गीता अध्याय 2 श्लोक 51)

3. **तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।**
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥

निरन्तर आसक्ति से रहित होकर सदा कर्तव्य कर्म को भलीभाँति करता रह। क्योंकि आसक्ति से रहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। (गीता अध्याय 3 श्लोक 19)

4. **जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।**
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

हे अर्जुन! मेरे जन्म और कर्म दिव्य हैं। इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्व से जान लेता है वह शरीर को त्याग कर फिर जन्म नहीं लेता और मुझे ही प्राप्त होता है। (गीता अध्याय 4 श्लोक 9)

गीता के अध्याय 5 के श्लोक 17, 24 और 25 में कहा है –

5. **तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।**
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः॥

जिनका मन तद्रूप हो रहा है, जिनकी बुद्धि तद्रूप हो रही है और सच्चिदानन्दघन परमात्मा में ही जिनकी निरन्तर एकीभाव से स्थिति है, ऐसे तत्परायण पुरुष ज्ञान के द्वारा पाप रहित होकर अपुनरावृत्ति को अर्थात् परम गति को प्राप्त होते हैं। (गीता अध्याय 5 श्लोक 17)

6. **योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।**
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति॥

जो पुरुष निश्चय करके अन्तरात्मा में ही सुख वाला है, आत्मा में ही रमण करने वाला है तथा जो आत्मा में ही ज्ञान वाला है, वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा के साथ एकीभाव को प्राप्त सांख्य योगी शान्त ब्रह्म को प्राप्त होता है। (गीता अध्याय 5 श्लोक 24)

7. **लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।**
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः॥

जिनके सब पाप नष्ट हो गये हैं, जिनके सब संशय ज्ञान के द्वारा निवृत्त हो गये हैं, जो सम्पूर्ण प्राणियों के हित में रत हैं और जिनका जीता हुआ मन निश्चल भाव से परमात्मा में स्थित है, वे ब्रह्मवेत्ता पुरुष शान्त ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। (गीता अध्याय 5 श्लोक 25)

ऐसे ही अन्य बहुत से श्लोकों में मुक्ति के उपाय बताये गये हैं, जैसे 8/10, 8/13, 9/25, 9/28, 9/32, 9/34 आदि आदि।

निष्कर्ष यह है कि हमें स्वयं ही यह निर्णय करना है कि इस जन्म में शुभ कर्म करके अगला जन्म सुधारना है अथवा दुष्कर्म करके अगला जन्म बिगाड़ना है या फिर जन्म-मरण से ही छुटकारा पाना है।

– रमेश चन्द्र गुप्त 'विनीत'

विचार करो क्या चाहिये

विचार करो हम गुरु के द्वार में खड़े हैं। गुरु भगवान कहते हैं तुम्हें क्या चाहिये। एक तरफ हैं तुम्हारी इच्छाओं की पूर्ति, एक तरफ स्वयं मैं हूँ। तुम्हें मेरा हर पल साथ चाहिये या जिस इच्छा पूर्ति के निमित्त आये हैं वो चाहिये। विचार कर लो और माँग लो। जहाँ गुरु भगवान होंगे वहाँ कामनाओं का द्वार बन्द हो जाता है। गुरु भगवान अपनी प्रेम अग्नि में कामनाओं की अग्नि को समाप्त कर देते है। जहाँ गुरु भगवान होंगे वहाँ प्रारब्ध अपने स्तर पर अटैक नहीं कर पाता। गुरु की शक्ति साहस प्रदान करके थोड़े कष्ट में ही उसका शमन करा देती है। गुरु की दृष्टि हर पल उसके ऊपर होती है। गुरु प्रसन्नता और शान्ति का सागर हैं। जहाँ भी विराजमान होंगे वहाँ प्रसन्नता और शान्ति का प्रसारण होगा। अशान्ति वहाँ प्रणाम कर जाती है।

गुरु प्रेम का मीठा-मीठा सागर है। जहाँ नाम होगा वहाँ गुरु प्रेम की मिसरी घुलती रहेगी। हम जीवन में आनन्द का अनुभव कब करते हैं। ईश्वर रस का सागर हैं, प्रेम का सागर हैं, आनन्द का सागर हैं। जब हम सच्चे अर्थों में गुरु के समीप बैठते हैं, भगवान के समीप, माँ के समीप बैठते हैं, गुरु, भगवान, माँ, अराध्य एक ही बात है। भाव की भूमि का अन्तर होता है, वैसे ये सभी शक्तियाँ एक हैं। जैसा हमारा भाव होगा उसी के अनुरूप साधना में दिग्दर्शन होता है।

कभी-कभी ध्यान में ऐसी अवस्था व्याप्त हो जाती है लगता है समय की गति यहीं रुक जाये। मन आनन्द के सागर में गोते लगाता है। ये जो अवस्था है जब हमारे भाव अपने आराध्य में लय होने लगते हैं, और आराध्य की शक्ति प्रेम के रूप में, आनन्द के रूप में, भाव के रूप में अपना रंग हमारे अन्दर बिखेरने लगती है और ध्यान में आनन्द अवतरित होने लगता है। जब हम आनन्द रस का अनुभव करने लगते हैं तब कहते हैं हमारा गुरु आनन्द का सागर है, प्रेम का सागर है, भाव का सागर है। यह तो ध्यान में कुछ समय की अवस्था है। सन्त तो हर पल, हर क्षण, आनन्द रस में गोते लगाते हैं। फलतः उनका आराध्य की शक्ति से एकाकार रहता है। जो जितने गहरे रस के सागर में उतरा है उतना ही जान सकता है।

इसके आगे भी मंजिल है। जब हम इच्छा पूर्ति के लिये प्रार्थना करते हैं यदि श्रद्धा और विश्वास का सम्बल मजबूत नहीं तब हमारे तप की शक्ति पर विराम रेखा लग जाती है। जब कोई पूर्ण श्रद्धा और विश्वास प्रेम का सम्पूर्ण समर्पण करके किसी इच्छा पूर्ति के लिये प्रार्थना करके गुरु के साइन पर सब छोड़ देता है। गुरु उसके तप की शक्ति पर कभी विराम रेखा नहीं लगाते। क्योंकि यहाँ सर्वसमर्पण के बाद गुरु के साइन पर सब छोड़ दिया जाता है। अब गुरु उसके हित अनहित का निर्णय स्वयं करेंगे। प्रार्थना है आग्रह नहीं जहाँ हम प्रार्थना द्वारा अपना आग्रह रखते हैं वहाँ कामना पूर्ति है। जहाँ प्रार्थना के बाद सब गुरु पर छोड़ दिया जाता है वहाँ सर्वसमर्पण है। यदि इच्छा पूर्ति हो जाती है तब हमारे तप की शक्ति पर विराम रेखा लग जाती है क्योंकि हमें अपने गुरु पर सम्पूर्ण विश्वास नहीं है। जहाँ विश्वास नहीं वहाँ भगवान नहीं। सोचो हम स्वयं कितने ज्ञानी हैं, अपने हित अनहित का निर्णय गुरु पर नहीं छोड़ सकते। वो ठहरे त्रिकालदर्शी, हमें आने वाले पल तक का ज्ञान नहीं। क्या हमने गुरु को कामना पूर्ति का साधन बनाया है, या साधना में प्रवेश किया है, या साधना को ही कामना पूर्ति का साधन बनाया है। जो साधना को कामना पूर्ति का साधन बनाते हैं वो गुरु की शक्ति का स्पर्श नहीं कर पाते। माया उसकी साधना को कामना पूर्ति में ही खर्च करा देगी। आगे की यात्रा के लिये क्या

रह जायेगा? इस व्यवहार जगत में भी यदि आपके पास धन है अनेकों सम्बन्धी हो जाते हैं। जब पास कुछ नहीं होता है तब पहचानने से भी इंकार कर देते हैं। इसी तरह अध्यात्म जगत में भी यदि नाम की पूँजी हमारे पास होगी तो गन्तव्य यात्रा अच्छी हो जायेगी। वहाँ भी नाम धन के ऐश्वर्य का बोलबाला है। **नाम धन का सिक्का चले लोक परलोक में।** नाम का सिक्का सब जगह चलता है। **कहीं जीवन घाटे का सौदा न बन जाये।** हम ये समझते हैं यदि हम गुरु भगवान के सामने अपना आग्रह नहीं रखेंगे तो शायद वो हमारी प्रार्थना स्वीकार नहीं करेंगे। लेकिन हमारा ये ज्ञान का प्रदर्शन ही तो गलत है। यदि वो प्रार्थना हमारे हित में है तो गुरु भगवान प्रार्थना अवश्य सुनेंगे, यदि हमारे अनहित में है तो अस्वीकार कर देंगे। चाहे आप अपना आग्रह रखें या न रखें। यदि ज्ञान का प्रदर्शन न करके सब गुरु के साइन पर छोड़ देते हो तो सर्वसमर्पण भी हो जाता है। तप की शक्ति पर विराम रेखा भी नहीं लगती। गुरु द्वारा दिया हुआ नाम धन परमात्म प्राप्ति का साधन बन जाता है। **– मीरा गुप्ता**

शोक समाचार

अत्यन्त दु:ख के साथ सूचित किया जाता है कि,

हमारी वरिष्ठ साधिका कानपुर निवासी श्रीमती सोमवती मिश्र की नातिन कु. अंशी सुपुत्री श्री आशुतोष अग्निहोत्री का दिनांक 16 अक्तूबर 2022 को केवल 9 वर्ष की स्वल्प आयु में स्वर्गवास हो गया। समस्त साधना परिवार को बालिका की असामयिक मृत्यु से गहरा आघात पहुँचा है।

❖ ❖ ❖

हमारी वरिष्ठ साधिका दिल्ली निवासी श्रीमती विनोद शर्मा 84 वर्ष की आयु में इस नश्वर संसार को त्याग कर दिनांक 6 नवम्बर 2022 को ब्रह्मलीन हो गई हैं। श्रीमती विनोद शर्मा जी का साधना परिवार की पत्रिका के सम्पादन में विशेष योगदान रहा है। दिनांक 15 नवम्बर को उनके परिवार के सदस्यों ने साधना धाम हरिद्वार में गुरुदेव के चरणों में शान्ति पाठ करवाया तथा उनकी सुपुत्री सुश्री सुचित्रा अरोड़ा ने अपनी माता जी के निमित्त रु. 1,00,000/- (एक लाख) की राशि गुरुदेव की सेवा में समर्पित की।

❖ ❖ ❖

हमारे वरिष्ठ साधक बीसलपुर (पीलीभीत) निवासी श्री कृष्ण कुमार अग्रवाल का दिनांक 25 अगस्त 2022 को निधन हो गया है। उनकी स्मृति में उनकी पत्नी उषा अग्रवाल तथा पुत्र नितिन व सचिन अग्रवाल ने दिनांक 1 सितम्बर 2022 को रु. 5100/- की धनराशि साधना धाम के लिये गुरु चरणों में समर्पित की है।

❖ ❖ ❖

पूज्य गुरुदेव से विनम्र प्रार्थना है कि इन सभी दिवंगत आत्माओं को अपने श्री चरणों में स्थान दें तथा इनके परिवार जनों को इनका वियोग सहने की यथायोग्य शक्ति प्रदान करें। साधना परिवार के सभी साधक भाई-बहन अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हैं।

आत्मा की खोज ही गीता है

आत्मा ही वह दिव्यमणि (जीवन का मूलतत्त्व) है, जिस के प्रकाश में संसार की अविद्या का समूल नाश हो जाता है।

मनुष्य तन से पशु, मन से मनुष्य और आत्मा से ईश्वर है। यह संसार हमारी ईश्वरीय सत्ता द्वारा हमारे अपने ही महान् चित्त की समय, स्पेस और पदार्थ की चतुआयामी कल्पना का कमाल है, जिसमें हम अपने शरीर द्वारा प्रवेश करके इन्द्रियों और मन के द्वारा इसे भोगना चाहते हैं। इसी को हमारे शास्त्रों में **'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्'** अर्थात् 'स्वयं रचकर स्वयं ही इसमें प्रवेश कर जाना' कहा है। शरीर रूप में हममें अहं आ जाना स्वाभाविक है और मन है तो मोह में तो हम पड़ ही जाते हैं। फलतः संसार हमें सत्य लगने लग जाता है और आँख से आत्मा नहीं दिखने से हमारा मन स्वतः ही पशु-भाव में चला जाता है। हमें लगता है हमारा तन है, मन है और संसार तो है; लेकिन आत्मा के अस्तित्व के बारे में हम संशय में पड़ जाते हैं। आत्मा की विस्मृति हो जाने से हम जनमते-मरते रहते हैं और अनन्त काल तक संसार में ही पड़े रहते हैं। बाहर निकल नहीं पाते। हमें संसार का निर्गम ही नहीं मिलता। अतः अब सबसे बड़ा प्रश्न हमारे सामने यह उपस्थित हो जाता है कि यदि आत्मा है तो वह कहाँ गयी। गीता कहती है कि आत्मा मरती नहीं है – **'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः...'** आदि आदि। इसलिये गीता उस आत्मा की खोज में लग जाती है। और आप गीता पढ़ेंगे तो पायेंगे कि गीता अपने मिशन में सफल हो जाती है।

काल (समय), स्पेस और पदार्थ – ये तीनों इतने भारी भ्रम हैं, जिनमें से हमारी सोच बाहर निकल ही नहीं पाती है। तुलसीदास जी ने इस भ्रम को पहचाना, इसलिये रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में भगवान् राम काकभुशुण्डि जी के सामने अपनी इस माया का बहुत रोचक ढंग से संवरण (निराकरण) करते हैं। काकभुशुण्डि जी देखते हैं कि विराट् स्पेस सिर्फ और सिर्फ दो अंगुल की दूरी में सिमट कर रह जाता है, सृष्टि का सारा-का-सारा पदार्थ काकभुशुण्डि जी सहित भगवान् के मुँह में समा जाता है और यह देखकर तो वे अत्यन्त आश्चर्य में पड़ जाते हैं कि उनके स्वयं के द्वारा अनन्त काल का बिताया हुआ समय केवल कुछ पल में ही घटा हुआ दिख जाता है।

पिछली सदी में आईन्स्टाइन ने प्रकाश की गति पर भिन्न-भिन्न प्रयोग करके यह सिद्ध कर दिया कि समय और स्पेस निरपेक्ष (Absolute) सत्य नहीं हैं, बल्कि सापेक्ष (Relative) सत्य हैं यानी सिकुड़ या फैल सकते हैं तथा पदार्थ भी सिर्फ शक्ति (Energy) – का पुंज मात्र है। इन दोनों अर्थात् काकभुशुण्डि-आख्यान और आधुनिक विज्ञान दोनों से यह सिद्ध होता है कि संसार के तीनों ही घटक समय, स्पेस और पदार्थ असत्य होते हुए भी हमें इसलिये सत्य प्रतीत होते हैं; क्योंकि हमें अपने शरीर और इन्द्रियों से इनका अनुभव होता है। इसलिये आत्मा जिसमें न स्पेस है, न समय है, न पदार्थ है; सत्य होते हुए भी हमें सत्य प्रतीत नहीं होती। आत्मा का यह अदृश्य 'सत्य' हमें कैसे दिखायी दे, इसी समस्या का हल गीता है।

विज्ञान की नवीनतम खोजों से हमें अवगत कराने के लिये संसार के विभिन्न देशों में TED सम्मेलन आयोजित किये जाते हैं। ऐसे ही एक सम्मेलन में मेडिकल साइंस के एक खोजकर्ता ने बताया कि ऑपरेशन करने के पहले मरीज को जो एनेस्थिसिया

दी जाती है, वह दिमाग को निश्चेष्ट नहीं करती, बल्कि दिमाग में एक ऐसा 'मूकशोर' (Silent Noise) मचा देती है, जिस में दिमाग इतना व्यस्त हो जाता है कि शरीर की सुधि ही 'भूल' जाता है। और तब डॉक्टर आराम से ऑपरेशन कर देता है।

ठीक इसी प्रकार दृश्य संसार को ही सत्य मानकर हम उसमें डूब गये हैं। इसलिये अपनी ही आत्मा को बिलकुल 'भूल' गये हैं। क्या आत्मा की यह प्रतिध्वनि गीता के इस श्लोक में सुनायी नहीं देती–

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

सिर्फ इन दो पंक्तियों का अर्थ हम समझ जायें तो पूरी गीता समझ में आ जायगी। प्रथम पंक्ति 'वैराग्य' और दूसरी पंक्ति 'ज्ञान' की है। जबकि शास्त्रों में 'ज्ञान' पहले आता है और 'वैराग्य' बाद में। लेकिन यहाँ ठीक उलटा है; क्योंकि भगवान् पहले हमें हमारी आत्मा को संयम यानी वैराग्य द्वारा जगाये रखने की बात करते हैं कि औरों की देखा-देखी तुम भी मत सो जाना और उसके बाद मुनियों के दृष्टान्त से यह ज्ञान भी दे देते हैं कि जिस सांसारिकता में दुनिया वाले जगे हुए हैं, उस की तरफ से अपनी आँखें बन्द रखो, वह तो वास्तव में घोर रात्रि है। इस प्रकार गीता को शास्त्रीय ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। गीता को तो सिर्फ हमारा दृष्टिकोण सही करना है, जिससे 'आत्मा' हमारे 'ध्यान' में आ जाये। संसार को पूर्ण रूप से (या आंशिक रूप से ही) मिटा देना हम–जैसे क्षुद्रजीव के वश की बात नहीं है। लेकिन गीता हमारे दृष्टिकोण को सही कर देती है। हमारे बुद्धि के टेलिस्कोप को घुमाकर उस कोण पर स्थिर कर देती है, जिसमें संसार तो बिलकुल मिट जाता है, लेकिन आत्मा 'फोकस' में आ जाती है।

अतः वह 'आत्मतत्त्व' जिसको आज हम भूल गये हैं, उसकी याद दिलाना ही गीता का मूल उद्देश्य है। गीता, यद्यपि ज्ञान का अथाह सागर है, लेकिन गीता का मूल उद्देश्य ज्ञान देना नहीं बल्कि अर्जुन ही नहीं, जन-जन को आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव कराना है। इसीलिये भगवान् ने ज्ञान नहीं बल्कि 'ज्ञानयोग', कर्म नहीं बल्कि 'कर्मयोग' तथा ज्ञान और कर्म दोनों की पराकाष्ठा 'भक्तियोग' पर सबसे ज्यादा जोर दिया है।

ज्ञान और अज्ञान दोनों से मुक्त हुए बिना 'आत्मा' का दर्शन नहीं हो सकता, क्योंकि आत्मा सारे बन्धनों से मुक्त है। इसलिये शास्त्रों का ज्ञान कितना भी हो जाये, उससे आत्मा का ज्ञान कभी नहीं हो सकता, क्योंकि ब्रह्म के ज्ञान की तुलना में हमारा ज्ञान सदा अपूर्ण, नगण्य और तुच्छ ही नहीं बल्कि जड़ता है। अतः उसे तज देने में ही भलाई है। उससे चेतन आत्मा का ज्ञान कभी नहीं हो सकता है। दूसरे यदि शास्त्रों के ज्ञान से ही आत्मा का ज्ञान होता हो तो मूर्ख को तो कभी आत्मा का ज्ञान नहीं होगा, जबकि आत्मा तो ज्ञानी और मूर्ख दोनों में है। ज्ञानी हो या मूर्ख, निर्बल हो या बलवान्, आस्तिक हो या नास्तिक गीता सबके लिये है। इसीलिये आत्म-ज्ञान की दिशा में अग्रसर होने में भगवान् ने वेदों के ज्ञान को भी बाधा बताया है – **'त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।'** यह वेदों की अवमानना नहीं है, बल्कि वेदों की सब से बड़ी प्रशंसा है। यह इस बात का प्रमाण है कि वेदों से बढ़कर कोई ज्ञान नहीं है। यदि वेदों से बड़ा कोई ज्ञान-शास्त्र होता तो भगवान् उसी शास्त्र का नाम लेते, वेदों का नाम नहीं लेते। क्योंकि भगवान् का तात्पर्य यहाँ 'बड़े-से-बड़े ज्ञान' से है। महान् ज्ञान के पर्याय चूँकि वेद हैं, इसलिये वेदों का उदाहरण दिया है।

ज्ञान के काँटे से अज्ञान के काँटे (यानि संशय) – को निकाल देने के बाद ज्ञान और अज्ञान दोनों

काँटों को फेंक देना चाहिये। ज्ञान के काँटे को सहेजकर रख लेने से मन सदा असहज ही रहता है। अतः अपनी सहज अवस्था यानि आत्मस्वरूप की प्राप्ति नहीं हो सकती।

स्वस्थ शरीर, सही सोच और निर्मल मन में ही आत्मा की अनुभूति जागती है। अर्जुन का शरीर स्वस्थ था, मन निर्मल था, लेकिन सोच सही नहीं थी। उसकी सोच को सही दिशा में ले जाने का उपक्रम ही गीता है, जो अर्जुन ही नहीं हर युग में हर व्यक्ति की सोच सही दिशा में ले जाने में सक्षम है। इसीलिये गीता मनुष्य की शाश्वत मित्र है।

हर नकारात्मक विचार को निरस्त करना और हर सकारात्मक विचार को प्रशस्त करना गीता का स्वाभाविक गुण-धर्म है। गीताजी में भगवान् स्वयं बैठकर ज्ञान दे रहे हैं। इसलिये गीता में अनन्त ज्ञान है, जिसका कोई पार नहीं पा सकता। पिछले पाँच हजार वर्षों में अनेक सन्त और विद्वानों ने जीवन भर गीताजी का अध्ययन किया, लेकिन गीता के ज्ञान का अन्त नहीं पा सके। गीता-रूपी नाव में बैठकर वे निस्सन्देह भवसागर तर गये, क्योकि वह बुद्धि धन्य है, जो ईश्वर के ध्यान में सतत लगी हुई है। भगवान् स्वयं ऐसे ज्ञानियों को अपना ही स्वरूप मानकर उनकी अभ्यर्थना करते हैं। लेकिन गीता का करिश्मा, गीताजी का सत्त्व, गीता का वह सहज और सत्वर ज्ञान (Spontaneous Knowledge) है, जो अर्जुन के बहाने हमें कह रहा है कि तपस्वी से श्रेष्ठ कर्मठ व्यक्ति होता है, कर्मठ से श्रेष्ठ ज्ञानी होता है और ज्ञानी से श्रेष्ठ योगी होता है। अतः तू योगी बन।

युद्ध छिड़ने के ठीक पहले कोई भी विवेकवान् व्यक्ति ज्ञान की पाठशाला खोलकर नहीं बैठेगा। अतः भगवान् का (तात्कालिक) उद्देश्य सिर्फ अर्जुन को यह याद दिलाना था कि तुम वह नहीं हो जो तुम सोचते हो। ये योद्धागण भी वह नहीं हैं, जो तुम इन को समझ बैठे हो। भगवान् चाहते थे कि किसी भी तरह जल्द-से-जल्द अर्जुन को अपने असली स्वरूप, अपनी आत्मा का पता चल जाये ताकि वह निर्द्वन्द्व भाव से लड़ सके और दैववश धर्मयुद्ध के बहाने से ही सही एक ही जगह युद्ध की इच्छा से ही एकत्र हुए (**समवेता युयुत्सवः**) आततायियों का थोक भाव में नाश हो जाये। अर्जुन में जब तक देहबुद्धि थी, तब तक वह अपने आप को, भीष्म, द्रोण आदि को, यहाँ तक कि भगवान् कृष्ण को भी देह तक ही सीमित समझे हुए था। आत्म-चेतना के आते ही वह अपनी भूल के लिये भगवान् से क्षमा माँगने लगता है कि मैं आज तक आपको साधारण सखा समझकर व्यवहार करता रहा, लेकिन आप तो परमपुरुष हो। आत्मा का ज्ञान नहीं रहने से ही हमारे हृदय में ईश्वर के प्रति मूढभाव रहता है। आत्मा का अनुभव होते ही हमारे हृदय में ईश्वर चेतना (God Consciousness) जाग्रत हो जाती है। जैसे कितना ही घना कोहरा हो, लेकिन सूर्य की एक किरण दिखते ही सूर्य हमें पूरा-का-पूरा दिख जाता है।

गीता कोरा दर्शन नहीं है, बल्कि मानवमात्र के कल्याण में रत **(सर्वभूतहिते रतः),** उद्देश्यपरक, व्यावहारिक चिन्तन है जिसको हम अंग्रेजी में ऑब्जेक्टिव थिंकिंग (Objective Thinking) कह सकते हैं।

अव्यक्त आत्मा के व्यक्त करने की मनोवैज्ञानिक विधि ही गीता है। अन्तर्यामी प्रभु पहले तो अर्जुन के रथ को भीष्म और द्रोणाचार्य के ठीक सम्मुख ले जाकर जानबूझकर अर्जुन की भावना को उभाड़ते हैं और जब अर्जुन मन, बुद्धि और शरीर से हार मानकर बैठ जाता है तो भगवान् मुसकराकर अत्यन्त द्रुत गति से उस को आत्मा का रहस्य बतलाना प्रारम्भ कर देते हैं और उसकी सारी जिज्ञासाओं का युक्तिसंगत

समाधान करते हुए छठे अध्याय तक उसको आत्मा का पूरा-का-पूरा रहस्य और आत्मा को जानने की योग-विधि समझाकर आत्मा को जानने का अनुपम फल बतला देते हैं। जब तक हमारे मन, बुद्धि और शरीर में से एक भी काम करता रहता है, तब तक हमें आत्मा की जरूरत ही नहीं पड़ती। जब ये तीनों फेल हो जाते हैं, तभी आत्मा का रोल शुरू होता है। मनुष्य मरने के लिये पैदा नहीं हुआ है, संसार-सागर पार करने के लिये पैदा हुआ है। मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र है और स्वयं ही अपना शत्रु है। यदि जीते जी आत्मा को नहीं जान पाये, तो हम 'आत्महनन' की ओर बढ़ जाते हैं –

जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

हम सब आज जाने-अनजाने इसी 'आत्महनन' की प्रक्रिया में लगे हुए हैं।

मनुष्यमात्र की कामयाबी का रहस्य आत्मा में निहित है। यह रहस्य गीता हमें बतलाती है। लेकिन आज हम पुनः आत्मा को बिलकुल भूल बैठे हैं। शरीर को ही सब कुछ समझे हुए हैं। विज्ञान ने भोगों के प्रचुर साधन सुलभ कर दिये हैं। लोगों में भोगों को भोगने की होड़ मच गयी है। विज्ञान के विकास ने आत्मा के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया है। संसार में अनात्मवाद बढ़ गया है। अनात्मवाद बढ़ने से अनीश्वरवाद बढ़ गया है। अनीश्वरवाद से अनाचार बढ़ गया है। अनाचार से एक ऐसी अपसंस्कृति आ गयी है, जिसमें कदाचार, दुराचार, भ्रष्टाचार आदि सब जायज़ है। दिशाहीन युवापीढ़ी की असीम ऊर्जा का कुछ निहित स्वार्थों ने गलत उपयोग करके उन्हें आतंकवाद की तरफ मोड़ दिया है। मनुष्य पशु बन गया है। ऐसा नहीं है कि पशु में आत्मा नहीं रहती, आत्मा पशु की भी होती है, लेकिन पशु को अपनी आत्मा का पता तब चलता है, जब वह मर जाता है। तब उसके पास दूसरा जन्म लेने के सिवाय कोई चारा नहीं रहता है। परन्तु मनुष्य को अपनी आत्मा का पता जीते जी भी लग सकता है। यदि जीते जी मनुष्य को अपनी आत्मा का पता चल जाये तो मनुष्य मरता नहीं है सिर्फ शरीर छोड़ता है। शरीर में रहते हुए प्राण छोड़ने को हम मरना कहते हैं, जिस में मर्मान्तक पीड़ा होती है, क्योंकि मन शरीर छोड़ना नहीं चाहता, लेकिन आत्मा में रहकर शरीर छोड़ने को हम 'मुक्ति' का नाम देते हैं। मृत्यु नहीं कह सकते, क्योंकि फिर उसे दूसरा जन्म नहीं लेना पड़ता, लेकिन संसार के भोगों में मनुष्य को इतना रस मिलने लगा है कि उसके लिये वह कुछ भी करने के लिये तैयार है, यहाँ तक कि मरने-मारने के लिये भी तैयार है। हमारा मन भोगों में इतना रम गया है कि हमें आत्मा की बात ही नहीं सुहाती। अतः गीता को पढ़ने की कौन कहे, गीता के ऊपर नजर भी पड़ जाती है तो हम अपनी नजर फेर लेते हैं कि यह तो ज्ञान की पुस्तक है, हमारे किस काम की! लेकिन गीता कोरे ज्ञान की पुस्तक नहीं, हमारी आत्मा का विज्ञान है। गीता इतनी निर्दोष है कि हमें आत्मा का 'सत्य' सिर्फ दिखाती है, हम पर आरोपित बिलकुल भी नहीं करती। आत्मा अपदार्थ है, इसलिये दिख जाये यही पर्याप्त है, अरोपित करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। तभी तो अन्त में अर्जुन को कह दिया **'यथेच्छसि तथा कुरु'**। आत्मतत्त्व की खोज और उसे मनुष्य मात्र को दिखा देना यह श्रीमद्भगवद्गीता की कृपा है।

– श्री ओमप्रकाश पोद्दार जी

(कल्याण पत्रिका, वर्ष 96, संख्या 4 से उद्धृत)

❖ ❖ ❖

गुरु की महिमा

व्यक्ति को किसी न किसी को आधार प्रभु प्राप्ति के लिये बनाना ही पड़ता है। बिना आधार के व्यक्ति उस ओर बढ़ ही नहीं सकता। वह आधार एक मात्र गुरु ही है। गुरु से ही मनुष्य का मन स्थिर हो सकता है। गुरु में ही ब्रह्म झलकने लगता है। पर श्रद्धा पक्की होना चाहिए, गुरु की कृपा से मनुष्य पार हो जाता है, गुरु से ही बुद्धि बढ़ती है, गुरु ही सतत मार्ग पर चलना सिखाते हैं, बिना गुरु के मनुष्य को अच्छे-बुरे का ज्ञान नहीं हो सकता, गुरु की कृपा से अज्ञान मिटता है, जन्म-जन्मान्तर के पाप भस्म होते हैं। गुरु नौका है। गुरु का वास हर समय हृदय में रहने से भगवान का वास होने लगता है।

गुरु सूर्य रूप है, कमल रूपी मनुष्य को सूर्य रूपी गुरु ही खिलाता है। जिस पर गुरु कृपा हो जाये वह बड़ा भाग्यशाली है, उसके समान जग में कोई नहीं। सतगुरु की शरण में आने से सभी को ऊँची गति मिलती है। गुरु सभी को पवित्र कर देते हैं। सब देवताओं के स्थान पर एक गुरु को ही पूजना चाहिये। मनुष्य अज्ञान के वश होकर भटकता फिरता है तो सतगुरु ही भ्रम को दूर कर सभी सुख उसको देते हैं।

स्वामी जी कहते हैं कि वह **महाशक्ति** मेरे लिये तो दूर की सत्ता नहीं है। मैं तो सदैव उसमें हूँ और वह मुझमें है। जब मैं किसी माँ की गोद में सिर रखता हूँ तो वह वेग से उतर आती हैं उसमें और उसके द्वारा मुझमें, इस प्रकार का वेगवान अवतरण, बड़ा प्रबल स्थायी प्रभाव रखता है दूसरे व्यक्ति पर। मैं भी उस माँ की कृपा के प्रबल प्रवाह को प्रतीत करता हूँ। मेरे लिये यह साधना होती है। दोनों के लिये माँ का आशीर्वाद होता है। प्रेम की जगी हुई अग्नि दग्ध कर देती है कुसंस्कारों को। अनन्यता सहज में पनपती है।

यह रास्ता निराला है, इसमें सन्देह नहीं। मोह को निकाल डालना मज़ाक नहीं है, परन्तु जब यह मोह अपने इष्ट के प्रति होता है तो वह ऊँचा उठाने वाला हो जाता है। जब तक उसकी उपयोगिता होती है तभी तक होता है फिर वह शान्त हो जाता है। विकलता भी शान्त होनी स्वाभाविक है, मैं तो ऐसा समझता हूँ। क्या मोक्ष की इच्छा के बिना ही आगे बढ़ा जाता है? यद्यपि मोक्ष की इच्छा भी तो इच्छा ही है, पर वह क्रमशः सभी इच्छाओं को शान्त कर देती है और अन्त में स्वतः शान्त हो जाती है। ऐसी ही है भक्त की प्रेममयी विकलता।

स्वामी जी ने कहा है कि मैं जीता हूँ सेवा के लिये। मैं जीता हूँ दूसरों में जागृति के लिये। परन्तु यह सब करते हुए मैं कर्त्ता हूँ ऐसा प्रतीत नहीं होता, किसी से बिलगने पर व्यथा नहीं होती। और कभी यह भान भी नहीं रहता, रहती है बस मस्ती। बन्धन का भय नहीं है, पतन का डर नहीं है। कल को यह काम होता ही रहे इसकी चिन्ता नहीं है, उसके आगे कण-कण झुका है, वह चाहे जहाँ और जैसे रखे सभी नाते उसके हैं, सभी काम उसके हैं। सभी प्यार उसका है और उसी पर उड़ेला जाता है। मैं प्रेम को प्रभु का रूप देखता हूँ। मैं प्रेम को आत्मा की जागृति का चिन्ह समझता हूँ। मैं प्रेम करने की निर्मल दिव्य प्रेम करने की योग्यता को प्रभु की समीपता का पैमाना मानता हूँ। मैं प्रेम को निर्मल करने वाला, प्रभु का कर देने वाला, अनन्य बना देने वाला साधन समझता हूँ। ईश्वर को अपने में पहचानो, वह आपके भीतर है, वह तो मिला हुआ है। उसने आपके (मैं) में अपने को छिपा

लिया है।

शरीर तो आने-जाने वाले हैं, सुख-दु:ख भी आते-जाते हैं। संस्कारों का क्षय होना भी अनिवार्य है। आप उनके हाथों को पहचान नहीं पा रहे हैं, यह जो हो रहा है उसी की लीला है। अपनी फडफडाहट छोड़कर उसकी शरण हो जाइयेगा, उसके द्वारा होने वाले खेल को देखें। आपको कहीं भागना नहीं है। दृढ़ता सीखनी है, अपने बल पर नहीं, उसी मंगलमयी माँ की कृपा के बल पर। अपना बल छोड़ दीजिये, उसी पर निर्भर रहें, आखिर आप कर ही क्या सकते हैं, देख ही तो लिया है। आप जितना मेरे समीप होते जायेंगे उतना ही आपका हित होगा, भरपेट राम-नाम स्मरण करते रहो।

दूसरों की बुराई सोचने से हम और बुरे हो जाते हैं। जो हम करेंगे उसके लिये हमें भोगना होगा, अपने को सुधार पायेंगे तो दूसरों को सुधारने का काम भी हो पायेगा। सुखी रहने के लिये ठीक सोचना, सोचने लायक बात सोचनी और भूलने लायक बात भूलनी जरूरी है।

श्री भगवान के चरणों की प्रीति ही अलभ्य है उसके लिये माँग करें। प्रभु कृपा होती है तो भीतर समता आ जाती है, राग-द्वेष मिट जाता है, मान अपमान का भाव भी चला जाता है, तब सभी आनन्दमय होता है, प्रभु को सभी में पाया जा सकता है। प्रभु चाहेंगे तो सभी काम सुगमता से होंगे। उसके हाथ बहुत लम्बे हैं वह तो छप्पर को बिना फाड़े ही बरसता है। जिह्वा की गुलामी छोड़कर शरीर की अनुकूलता की दृष्टि से भोजन करें। नाम जपने वालों में तो महान मनोबल पैदा हो जाता है, प्रभु का सहारा तुम्हारे साथ है, तुमने उसकी शरण ली है अत: कभी निराश मत होना, शरीर को उसका समझना जैसे चाहे वैसे रखे उसे अधिकार है।

श्री भगवान की महिमा में श्रद्धा विश्वास होने पर उसमें प्रीति होनी निश्चित है। प्रीति होने पर उसका स्मरण स्वत: होगा फिर प्रयत्न भी न करना होगा।

मैं आपसे आग्रह करता हूँ कि मेरी पुस्तकों को धीरे-धीरे और साधना की भावना से ग्रहण करने की चेष्टा कीजिये।

अध्यात्म को यदि हम जीवन में सबसे ऊँचा स्थान नहीं देते और समूचे जीवन को उसी दृष्टिकोण से देखने और उसी सूत्र में पिरोने की चेष्टा नहीं करते तो वह मर जाता है हमारे लिये। प्रभु के लिये भीतर तड़प पैदा हो, समूची भूख हो फिर भोजन का आनन्द आयेगा। प्रभु से प्रार्थना करें, वह सुनेगा और आपको अपनी लगन का दान देगा। आपके प्रसुप्त मन में विकार हैं अथवा नहीं, इसे जानने की आवश्यकता नहीं, सफाई का कार्य आपकों नहीं करना है, जिसे करना है वही जानता है और अपने अचूक तरीके से सभी कुछ कर डालेगा, आप जो-जो हो चैन से देखते जाओ और उस पर पूर्ण विश्वास रखो और उसी पर अनन्य भाव से आश्रित हो जाओ।

विषयों से मन हटने पर और उसको अन्तर्मुख करने पर ही हमें भगवद्प्रेम की उपलब्धि होती है, जिसका देहाभिमान गल गया वस्तुत: उसी ने कुछ पाया है।

जब तक व्यक्ति में थोड़ा भी संसार का आकर्षण है और यह आकर्षण सुख की चाह या आसक्ति के कारण ही होता है, तब तक परमात्मा में प्रीति नहीं होती। प्रभु में प्रीति होने पर थोड़े में ही उद्दीपन हुआ करता है।

अधिकारी वंचित नहीं रहता, उर अन्तर में प्यास लगी हो तो प्रभु हमारे पास सन्त भेज देते हैं। फूल खिलेगा तो सुगन्ध चारों ओर फैलेगी। प्रभु भक्त के भजन में प्रेम के भाव प्रकट होते हैं। **सन्त मिलन को जाइए तज ममता अभिमान।** उसके पास से कृपा का प्रवाह तो हो ही रहा है। प्रभु के पास

विनय भाव से जाना, भक्ति में लीन होने से शान्ति मिलती है, प्रेम के सात्त्विक भाव प्रकट होते हैं, फिर तृप्ति होती है। मन की चंचलता ही मन की विकृति है। भाँति-भाँति के संकल्प ही रोग हैं, सन्त के पास जाकर मन एकाग्र होता है, भक्ति डूबना सिखाती है, समुद्र की सतह पर लहरों का शोर है, उसी की तह पर जाने से गहन, गम्भीर शान्ति है। किसी भाव में, विचार में खो जाओ तो संसार का शोर समाप्त हो जायेगा।

गुरु आत्मा का आहार देता है, गुरु मानसिक रोग मिटाता है, मानसिक रोग के केन्द्र अलग हैं, उनका इलाज भी अलग है।

प्रभु के मिलन के लिये दो बातों की आवश्यकता है ''प्रभु को पुकारते जाओ और माथा टेकते जाओ'', प्रभु पर विश्वास ही जीवन का मूल मन्त्र है जो हर आपत्ति और चिन्ता में जीने का सहारा बनता है। यदि प्रभु पर दृढ़ विश्वास है तो चिन्ता और भय व्यक्ति के पास कभी फटक भी नहीं सकते, विश्वास ही आत्मिक शक्ति देता है। आत्मिक शक्ति की दृढ़ता ही भगवान की शक्ति को आधार देती है, विश्वास का सहारा लेकर ही व्यक्ति प्रभु के समीप पहुँच सकता है, केवल प्रभु पर विश्वास और हृदय में उसे पाने की सच्ची लगन हो तो बेड़ा पार हो जाता है।

प्राणों में प्रेम की ज्योति का जन्म हो, प्रेम के अतिरिक्त मुझे कोई भी रास्ता नहीं दिखाई पड़ता जो प्रभु तक पहुँच सकता हो, प्रेम है प्रारम्भ और परमात्मा है अन्त।

– श्रीमती रमन सेखड़ी

आदर्श-जीवन-निर्माण

''आदर्श के बिना जीना मुझे सूना प्रतीत होता रहा है, जब से मैं सोचने लगा हूँ। अपनी ओर सोचना मेरी आदत बचपन से रही है और यह आदर्श दिन प्रतिदिन मुझ में विकसित होता रहा है। जीवन-निर्माण की धुन थी और उसके लिये जो भी हाथ लगा मैंने पढ़ा – महापुरुषों की जीवनियाँ, धार्मिक पुस्तकें, मनोविज्ञान इत्यादि, और जीवन इस सबके फलस्वरूप बदलता ही चला गया। प्रत्येक प्रकार के अध्ययन ने मुझ पर छाप डाली है।''

– रामानन्द

Rising beyond Ego

Revered Swami Ramanand Ji Maharaj has written commentary on Geeta titled Gita Vimarsh. In the preface itself, Swamiji has dealt with the issue of ego and the mistake we make when we think that what we speak or write is our own thoughts. Swamiji clarifies that our present thinking is also not entirely our own. It is a combination of what we have heard, seen, imbibed from the existence. Nothing we say can be authenticated as our own original thought. In fact, Swamiji says that without our knowing, so much information, knowledge, call it what you may, comes to us.

Thoughts that come to us may also be due to messages beyond the physical realm. Therefore, when an author receives appreciation for what he writes, it appears totally misplaced. It is foolish even to think that somebody has written an insightful article. Nobody can claim proprietary rights about any of the thoughts spoken or written.

It is fallacious to claim exclusive ownership of any idea. "O Gargi," says Yagnavalkya – "one universal imperishable consciousness has penetrated everything in this universe". Manduka Upnishad says "Know that the Atman has interpenetrated the external and internal universe along with mind and vital energies." Hence anything that we think also is not exclusively ours. We are all part of the universal consciousness. This leaves no place for pride or any egoistical thought.

This leads one to the second question as to why does one write in the first place. Is it to show-off to the world of how wise one has become? Or is it to gain approval of some of the people and bask in the glory of the encomiums? Or it is to boost one's already overblown ego by showing also how keenly the author has observed life and reached unique inferences? What does one write that has already not been expressed better by more accomplished people?

Swamiji provides the answer when HE says, "I write because I know what I write is not entirely my own but if somehow it is able to create a new meaning in the mind of someone or it may lend new depth to the thinking of the individual then I feel that my exertion has paid off."

Swamiji does not claim to be Mr. KNOW ALL. He clearly credits the readings, discussions and experiences for shaping his views. Often Swamiji says "what I know as of date". Thus, Swamiji has shared copious amount of his Wisdom but done so by remaining humble. He does not say anywhere that his insight or conclusions are the last word on any subject. He encourages exchange of views and exhorts us to try and live by his teachings but reach our own conclusions.

Our existence is so brief in this world and on the evolutionary scale it is not even equal to a speck of dust. Yet we remain oblivious to the fact that all of our possessions will be left behind and all our ownership, disputes and claims, shall cease at once. Statements such as "I wrote it," "I told you so." etc. lose all importance. We have seen that our thinking even is not exclusively our own, hence let the praise or criticism neither impact us nor our ego.

Vivekanand spoke of the Vedantic idea of this unity of all beings in his speech on 'God in Everything', delivered in London in 1896.

"This is another great theme of the Vedanta, this oneness of life, this oneness of everything. We shall see how it demonstrates

that all our misery comes through ignorance, and this ignorance is the obsession with manifoldness. The separation between man and man, between nation and nation, between earth and moon, between moon and sun. Out of this idea of separation comes all misery. But, the Vedanta says, this separation does not exist, it is not real. It is merely apparent, the limitations imposed by the five instruments of knowledge man is bound with – the five sensory organs. In the heart of things, there is Unity still. And that Unity is God."

The only take away one could gather from reading literature left behind by Swamiji is that the idea of 'me' being this body or bearing a name or identification or having a status are meaningless.

From the above discussion, I have drawn the conclusion that – "I must remain grateful to all those who shared their knowledge and all the contemporaries who have influenced me with their thinking. All my thinking is not mine, hence there is no place for ego."

— Dinesh Bahl

भजन

जहाँ ले चलोगे वहीं मैं चलूँगा।
जहाँ आप रख लोगे वहीं मैं रहूँगा॥

यह जीवन समर्पित चरण पे तुम्हारे।
तुम्हीं मेरे सर्वस्व तुम्ही प्राण प्यारे॥
तुम्हें छोड़कर नाथ रह ना सकूँगा।
जहाँ आप रख लोगे वहीं मैं रहूँगा॥

ना कोई उलाहना नहीं कोई अर्जी।
कर ले करा ले जो है तेरी मर्जी॥
जो कहते हो तुम अब वही मैं करूँगा।
जहाँ नाथ रख लोगे वहीं मैं रहूँगा॥

दयानाथ दयनीय है मेरी अवस्था।
तेरे हाथ में अब सारी व्यवस्था॥
कहना जो होगा तुम्हीं से कहूँगा।
जहाँ नाथ रख लोगे वहीं मैं रहूँगा॥

मेरे पास जो है तुम्हीं ने दिया है।
तुम्हीं से लिया है तुम्हीं को दिया है॥
उपकार तेरे प्रभु कह ना सकूँगा।
जहाँ नाथ रख लोगे वहीं मैं रहूँगा॥

जहाँ ले चलोगे वहीं मैं चलूँगा।
जहाँ आप रख लोगे वहीं मैं रहूँगा॥

– सुशीला जायसवाल

भजन

कृपा की जो होती न आदत तुम्हारी
तो होती प्रभु फिर क्या हालत हमारी?
किये हैं बहुत पाप हमने जो जग में
फिर आते हम कैसे शरण में तुम्हारी?

तेरी ही शक्ति समाई सभी में
हलचल उसी से होती है सब में
आलोकित करे ज्ञान तेरा जगत को
उसी से परम शान्ति पद को वह पाए।

जड़ योनि से मानव में लाकर प्रभु ने
परमधाम पाने का अवसर दिया है
कर्मयोग है साधन सिखाया सभी को
निश्चित कटेंगे बन्धन हमारे।

श्रद्धा सुमन लेकर आये शरण में
अविचल सदा मन रहे तव चरण में
उपकार हम पर किया है तुम्हीं ने
मुझको भी रखा शरण में तुम्हारी।

– सुशीला जायसवाल

पूज्य साहू जी का जीवन चरित्र

स्वामी रामानन्द साधना शिविर का जो रूप आज हमारे सामने है उसकी आधार शिला कब, कहाँ और कैसे रखी गई थी और कौन उसके आधार स्तम्भ रहे हैं, इसकी जिज्ञासा सभी साधकों के मन में उठती होगी! इस जिज्ञासा को शान्त करने में सहायक होंगी उन साधक भाई-बहनों की मधुर स्मृतियाँ जो आरम्भ से ही साधना परिवार से जुड़े हुए हैं और जिनके पूर्वजों का योगदान अविस्मरणीय है। ऐसे ही एक महत्त्वपूर्ण स्तम्भ थे साहू काशीनाथ जी जिन्होंने श्री गुरु महाराज के मुख्यालय को बीसलपुर में स्थापित करवाया। श्रद्धेय साहू काशीनाथ जी के गुरु महाराज से जुड़ने के सभी प्रकरण उनके सुपुत्र श्री अनिल मित्तल जी की लेखनी से उन्हीं के शब्दों में ज्यों के त्यों धारावाहिक रूप से प्रकाशित किये जा रहे हैं। प्रस्तुत है प्रकरण की प्रथम कड़ी।

प्रस्तावना

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥

साधना परिवार के सभी भाई-बहनों को मेरी राम-राम!

मैं अनिल चन्द्र मित्तल (सुपुत्र स्वर्गीय पूज्य साहू काशीनाथ मित्तल, बीसलपुर), आज पिताजी जिनको साधना परिवार के लोग स्नेह से साहू जी के नाम से बुलाते थे, उनके जीवन के विषय में कुछ संस्मरण साझा करना चाहता हूँ।

मेरा जन्म नवम्बर सन् 1952 में हुआ। जन्म से सन् 1967 तक मैं बीसलपुर में पढाई के सिलसिले में रहा, पर पिताजी से बात करने का कम समय मिला, उसके बाद सन् 1985 तक बी.एससी., इंजीनियरिंग, नौकरी आदि के कारण बाहर रहा। सन् 1985 में नौकरी छोड़कर घर का व्यापार कोल्ड स्टोरेज देखने के लिये बीसलपुर आ गया।

सन् 1985 से नवम्बर 1991 पूज्य पिताजी के निर्वाण तक मुझे बीसलपुर में उनके साथ बैठने, सत्संग करने एवं ऊपर के सिद्ध ध्यान कक्ष (जिसे हम जाप का कमरा कहते थे) में उनके साथ ध्यान का भी काफी अवसर प्राप्त हुआ। इस दौरान मैंने कई विलक्षण अनुभव भी पाये और उनके जीवन से जुड़े बहुत से अनछुए पहलुओं से भी अवगत हुआ। मैं चाहता हूँ कि उनके जीवन की घटनायें एवं अनुभव जो कहीं-कहीं प्रकाशित हो चुके हैं को विस्तार न देकर उनके अनछुए अनुभवों को साझा करूँ।

आगे के समस्त सम्बोधनों में उन्हें पूज्य साहू जी के नाम से सम्बोधित करेंगे।

निम्न विवरण पूज्य साहू जी के साथ हुई वार्ता के स्मरण के आधार पर या अन्य साधकों के साथ हुई वार्ता एवं पुस्तकों आदि के आधार पर कहूँगा। इसमें यदि कहीं तिथि या किसी अन्य तथ्य में कोई त्रुटि रह गई हो तो कृपया क्षमा करें।

पूज्य साहू जी के इस जीवन चरित्र को हम चार भागों में बाँट कर साझा करेंगे।

प्रथम भाग

आज हम पूज्य गुरुदेव महाराज के साधना परिवार के उन अमूल्य रत्नों में से एक पूज्य साहू जी के विषय में अपनी यादें संजोने का प्रयास कर रहे हैं, जिनकी चमक एवं किरणें आज हमारे साधना धाम, साधना परिवार एवं गुरुदेव महाराज द्वारा प्रशस्त किये

गये मार्ग और साहित्य आदि के द्वारा आलोकित कर रही हैं। यदि हम पूज्य साहू जी को हमारे साधना धाम एवं साधना परिवार का प्रमुख स्तम्भ कहें तो शायद उचित ही होगा। जिनके प्रयासों से ही आज हम हरिद्वार में गंगा किनारे एक सुन्दर ध्यान-स्थली (साधना धाम) एवं गुरुदेव भगवान की तप-स्थली या यूँ कहें कि ज्ञानोदय-स्थल (दिगोली धाम) का अपनी साधना यात्रा को आगे बढ़ाने में उपयोग कर रहे हैं।

पूज्य साहू जी का एक विलक्षण व्यक्तित्व था। वे सौम्यता, सादगी, नम्रता एवं निरहंकारिता का एक जीता जागता उदाहरण थे। शायद इसी निष्कपटता एवं निर्मल मन के कारण ही वे गुरुदेव स्वामी रामानन्द जी महाराज जैसे महानतम सन्त को, बीसलपुर जैसे छोटे साधन-विहीन नगर में अपना कार्य क्षेत्र स्थापित करने के लिये प्रेरित कर सके। धन्य हैं हमारे पूज्य गुरुदेव एवं आदरणीय साहू जी जिनके कारण बीसलपुर जैसा निकृष्ट नगर भी पावन धाम के रूप में प्रतिष्ठित हो गया।

अब मैं संक्षिप्त में पूज्य साहू जी के जीवन चरित्र का परिचय देना चाहूँगा। पूज्य साहू जी का जन्म बीसलपुर में 18 जून 1914 को एक प्रतिष्ठित जमींदार परिवार में हुआ था। उनकी **दो बहनें एवं एक भाई** भी थे। उनका विवाह लगभग 18 वर्ष की आयु में, शाहजहाँपुर के बड़े जमींदार की इकलौती पुत्री सुश्री सरस्वती देवी जी से हुआ। वे अक्सर मज़ाक में कहते थे कि मैं प्रथम विश्व युद्ध के साथ इस संसार में आया हूँ। जब वे 25-26 वर्ष के रहे होंगे उनके पिता जी श्री साहू गोपीनाथ जी का स्वर्गवास हो गया था। **बड़ी बहन** का विवाह हो चुका था और **छोटी बहन** राजकुमारी जी का विवाह भी पिता जी साहू गोपीनाथ जी की मृत्यु से कुछ समय पहले ही हुआ था।

पिता जी की मृत्यु के पश्चात उनके ऊपर छोटी उम्र में जमींदारी के बड़े साम्राज्य एवं दो छोटे-छोटे बच्चों का भार आन पड़ा। पिता जी की मृत्यु को कुछ समय ही बीता होगा कि छोटी बहन राजकुमारी जी के पति की आकस्मिक मृत्यु हो गई। विवाह के कुछ ही समय के बाद बाल विधवा होना एवं ससुराल में कुछ जटिल समस्याओं के कारण साहू जी को उन्हें बीसलपुर लाने का निर्णय करना पड़ा। वे बाद में जीवन पर्यन्त बीसलपुर में ही रहीं।

पूज्य साहू जी पर जमींदारी की बड़ी जिम्मेदारी, उनसे सम्बन्धित अनेकों मुकदमें, दो छोटे बच्चे (भाई कृष्ण चन्द एवं **बहन कृष्ण कान्ता जी**) और साथ ही साथ विधवा बहन आदि समस्याओं का पहाड़ टूट पड़ा। इनसे जूझते हुए, जीवन से त्रस्त, जीवन नैय्या मंझधार में हिचकोले खा रही थी।

ऐसे समय में खेवनहार, दिव्य ज्योति की किरण बनकर पूज्य गुरुदेव महाराज स्वामी रामानन्द जी का साहू जी के जीवन में पदार्पण हुआ। ऐसा लगा मानो भरी गर्मी की दोपहरी में किसी वट वृक्ष ने अपनी शीतल छाया में शरण दे दी हो। उस दिव्य आत्मा (गुरुवर) के शरण देते ही जैसे शीतल मन्द सुगन्धित हवा भी आने लगी थी। बड़ी-बड़ी समस्याएँ, बोझ लगता जीवन, जीवन के प्रति उदासीनता सब मानों अकस्मात ही मधुर झंकार में परिवर्तित हो गये हों। यह विलक्षण घटना घटित हुई सन् 1942 में।

आगे पूज्य साहू जी के गुरुदेव के साथ के सफर के 11 वर्षों का विवरण द्वितीय एवं तृतीय भाग में।

सबको राम-राम के साथ धन्यवाद!

– अनिल चन्द्र मित्तल

(भाग-2 अगले अंक में)

वार्षिक शिविर-2022 कानपुर (15 से 18 अक्तूबर 2022)

प्रवचन सार

बहन शशी बाजपेई जी

हम सभी बहुत भाग्यशाली हैं जो सत्संग शिविर में आये हैं। स्वामी जी कहते हैं मैं गीता को अपने अन्दर रमा लेना चाहता हूँ। गीता हमें सिखाती है कि कैसे घर-गृहस्थी में रहते हुए साधना करनी है, किस प्रकार का हमारा जीवन हो, कैसे भजन हो, कैसे स्थिर रहें। इससे हमारा समुचित विकास होता चला जाता है।

गीता में ईश्वर प्राप्ति के तीन मार्ग बताये गये हैं –

1. सांख्य मार्ग (ज्ञान मार्ग),
2. कर्मयोग मार्ग,
3. भक्ति मार्ग।

हम लोगों का भक्ति मार्ग है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी लिखा है –

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी।
बिनु सत्संग न पावहि प्रानी॥

बिना सत्संग भक्ति नहीं मिलती।

गीता के पाँचवे अध्याय के 10वें श्लोक में भगवान कहते हैं –

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥

जो अपने सभी कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके और आसक्ति को त्याग कर कर्म करता है, वह जल से कमल के पत्ते की भाँति पाप से लिप्त नहीं होता। हमें अपने दृष्टिकोण को बदलना है, छोड़ना कुछ नहीं। हमें धन, दौलत, पुत्र, पौत्र सब साधन मिले हैं साध्य को प्राप्त करने के लिये।

दुःख के चार कारण हैं –

1. इच्छा,
2. कामना,
3. राग,
4. द्वेष।

सुख के चार कारण हैं –

1. प्रेम,
2. सेवा,
3. त्याग,
4. विनम्रता।

भाई हरिप्रकाश सिंह चौहान जी

परहित सरस धर्म नहीं भाई।

गीता के छठे अध्याय के 14वें श्लोक में भगवान कहते हैं –

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः॥

अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है, परन्तु जो पुरुष केवल मुझको ही निरन्तर भजते हैं, वे इस माया का उल्लंघन कर जाते हैं, संसार से तर जाते हैं। भगवान कहते हैं, मेरी शरण हो जा। माया पार करने का यही रास्ता है। उनकी शरण कैसे जा सकते हैं। जब हम आसक्ति से परे होंगे, अनासक्त होंगे, तो हम उनकी शरण में आसानी से पहुँचेगे। गीता का छठा अध्याय बहुत ही बहुमूल्य है। आसक्ति का मतलब बैठे बिठाये दुःख को दावत देना है।

गीता के बाहरवें अध्याय के 13वें श्लोक में भगवान कहते हैं –

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥

जो सब भूतों में द्वेषभाव से रहित स्वार्थरहित,

सबका प्रेमी और ममता से रहित है, अहंकार से रहित, सुख दु:ख की प्राप्ति में सम और क्षमावान है, ऐसा व्यक्ति ही अनासक्ति की तरफ धीरे-धीरे चल सकता है। अगर हम यह बार-बार विचार करें कि यहाँ कुछ भी टिकने वाला नहीं है, फिर चाहे रजस, तमस, सतो गुण कुछ भी आये, हम आत्मभाव में रह कर सभी कर्म करें। राम नाम का जाप करें तो स्वयं ही ईश्वर के समीप होते जायेंगे और आसक्ति नहीं होगी। राम नाम सब चीजों से छुटकारा दिलायेगा। जब भक्ति पैदा हो गई तो माया स्वयं चली जायेगी। सत्य से परिचय हो जायेगा। दुर्गुण स्वयं चले जायेंगे। हम उसकी शरण में चले जायेंगे।

बहन पूजा जयसवाल जी

हमें विचार करना चाहिये कि हमें जीवन किस लिये मिला है, जीवन का उद्देश्य क्या है। जीवन का उद्देश्य है प्रभु की प्राप्ति और इस दिशा में बढ़ने का पहला कदम है पुकार। हमें प्रभु को तीव्रता और दृढ़ता से पुकारना चाहिये। पुकार को बलवती करने के चार माध्यम हैं –

1. **सत्संग – प्रथम भगति संतन कर संगा –** हम जैसी संगत करेंगे वैसे ही बनेंगे। हमें अपने समय को व्यर्थ अनर्थ में नहीं बिताना है, हर क्षण का सदुपयोग करना है।
2. **स्वाध्याय – सत्शास्त्रों का अध्ययन –** जो स्वामी जी की पुस्तकों का अध्ययन करते हैं, वो शीघ्रता से आगे बढ़ते हैं। रामायण, गीता पढ़ें, पत्र पीयूष, गीता-विमर्श बहुत से साहित्य हैं। सन्तों का चरित्र पढ़ें।
3. **मनन – सुनो कण भर, गुनो मन भर, करो टन भर –** जो पढ़ो उसका मनन करते रहो। राम नाम का जाप करते रहो। जो मिलना होगा यहीं मिलेगा, वर्ना कहीं न मिलेगा।
4. **प्रार्थना –** प्रार्थना दो प्रकार की होती है –
   - **अ. नाममयी प्रार्थना –** राम नाम का जाप करें, जब कुछ काम नहीं आता, तो प्रार्थना काम आती है।
   - **ब. भावमयी प्रार्थना –** भजन, कीर्तन करें, भाव से भगवान से जुड़े।

बहन अरुणा पाण्डेय जी

तुमने छुआ तो रेत को चंदन बना दिया,
तुमने छुआ तो धूल को बंदन बना दिया,
पारस मणि सी शक्ति कोई जादुई लिए,
तुमने छुआ तो लौ को कंचन बना दिया।

आध्यात्मिक साधन खण्ड 2 में महाराज जी ने 3 बातें बताई हैं –

1. सन्तोष,
2. कृतज्ञता,
3. विश्वास।

1. **सन्तोष –** जो प्राप्त हो उसी में सन्तुष्ट रहें। हमें विषयों के पीछे भागना नहीं है। यदि कामनाओं की पूर्ति नहीं होती है तो हम दूसरी जगह भागने लगते हैं। ऐसा करना ठीक नहीं है। जो कुछ भी हमें मिला है उसी के लिये भगवान का धन्यवाद करना है।
2. **कृतज्ञता –** हमारे विकास के लिये हमें सब कुछ मिला है, उसे सहज में स्वीकार करना है, हर समय मस्तक झुकाना है।
3. **विश्वास –** यदि सन्तोष और कृतज्ञता आ जाए, तो विश्वास अपने आप ही आ जायेगा। हमें यह तीन चीजें पकड़नी हैं। और छोड़ना है आसक्ति को। आसक्ति हृदय का भाव है, पहले हमें इसको पहचानना है। आसक्ति हमें चीजों से, लोगों से हो जाती है। यह हमें अपने से (स्वयं से) भी हो जाती है, तब हमारे अन्दर अहंकार हो जाता है। तब हम अपने को कर्ता समझने

लगते हैं। राम नाम के द्वारा आसक्ति क्षीण हो जाती है।

बहन गीता जायसवाल जी

मनुष्य जीवन का लक्ष्य भगवत प्राप्ति है, घर गृहस्थी में रहकर हमें ईश्वर को प्राप्त करना है। स्वामी जी कहते हैं, जहाँ हो वहीं रहो, अपने दृष्टिकोण को बदलो। सभी कार्य प्रभु का समझ कर करें। प्रभु कहते हैं, मन तू मुझे दे दे। मेरा भक्त बन जा। हमें चिन्ता नहीं करनी चाहिए, चिन्तन करना चाहिये। 84 लाख योनियों के बाद हमें जन्म मिला है, उसका सदुपयोग करें। भगवान पर पूरा विश्वास करें।

एकै साधै सब सधै, सब साधै सब जाय।

भगवान का पूजन कर्मों के द्वारा करें। अपने स्वधर्म का पालन करें। नाम की डोरी को पकड़े रहें।

कलियुग केवल नाम अधारा।
सुमिरि सुमिरि नर उतरहिं पारा॥

विभिन्न परिस्थितियों में सम रहें।

बहन कृष्ण कान्ति मिश्रा जी

हमारी साधना व्यावहारिक साधना है। संसार में ऐसे रहो जैसे जल में कमल का पत्ता पड़ा रहता है। स्वामी जी हमारे साथ हैं, हमारे संगी-साथी हैं।

संसार में अंदर से रहो हट के,
बाहर से रहो सट के।

अन्दर से सिर्फ प्रभु को ही अपना मानो, बाहर से संसार के होकर रहना है। क्योंकि हमें व्यवहार से किसी के साथ गलत नहीं करना है। गाड़ी बंगला सब यहीं रह जायेगा, हम सिर्फ कर्म को लेकर जायेंगे, गृहस्थ हमारा आश्रम की तरह है।

गीता के चौदहवें अध्याय के 24वें श्लोक में कहा है –

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥

साधु व्यक्ति सबको सम समझता है। उसके लिये पत्थर, सोना सब सम हैं। लेकिन कहना सरल है, करना कठिन है। रोज करते करते हमारे व्यवहार में उतरेंगे –

करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।

ईश्वर ने हमारा हाथ पकड़ा है, वह छोड़ेगा नहीं। राम नाम के द्वारा हमारा विकास होता जायेगा। बीज को विकसित होने के लिये मिटना होता है।

बहन सुमन जायसवाल जी

गीता के अठारहवें अध्याय के 66वें श्लोक में कहा है –

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

प्रभु जी कहते हैं, तू अपनी सभी धारणाओं, मान्यताओं को मेरी शरण में रख दे। कर्तव्य कर्म तो करना ही है पर उसका परिणाम जो पहले ही हम सोच लेते हैं, उसको हमें प्रभु की शरण में रख देना है। जब अर्जुन कहते हैं, मैं अपने प्रिय जन को कैसे कष्ट पहुँचा सकता हूँ, उनको कैसे मार सकता हूँ, तो भगवान कहते हैं, हे अर्जुन! तू अपना कर्तव्य कर्म कर, परिणाम की चिन्ता मत कर। राष्ट्रीय हित के लिये युद्ध में लोग मर जाते हैं। जब कर्ण का पहिया पृथ्वी में धँस गया, तो कर्ण ने कहा कि पहिया बाहर आ जाये तो मारना। अर्जुन ने कहा यही न्याय संगत है। तो भगवान ने कहा तुम इसको तुरन्त मार दो। अर्जुन ने वही किया।

मनुष्य जीवन का उद्देश्य भगवत प्राप्ति है।

कलियुग केवल नाम अधारा।
सुमिरि सुमिरि नर उतरहिं पारा॥

बहन कुसुम सिंह जी

गीता के आठवें अध्याय के 14वें श्लोक में भगवान बता रहे हैं –

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

जो मुझ में अनन्य चित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तम को स्मरण करता है, जो निरन्तर मुझ में युक्त रहते हैं, जो मेरा आश्रय लेता है, ऐसे योगी को मैं सुलभ हो जाता हूँ। उसे मैं सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।

हर नज़र में,
हर बात में,
हर सोच में।

भगवान भी आए, हमें भटकना नहीं है। गुरु का आश्रय लेना है। लेकिन हर समय पूजा-पाठ तो नहीं कर सकते, हर कर्म को उससे जोड़ देना है, समुचित मनोवृत्ति से कर्म करना है।

जो भी कर्म हम यज्ञ समझकर करते हैं, वह भगवान स्वीकार करते हैं। जो सुबह से शाम तक सभी कर्म भगवान से जुड़कर करता है उसको सहज ही भगवान की प्राप्ति हो जाती है।

भक्त दुलारे राम के जित चाहे तित जाए।
तिनके पीछे हरि फिरे कि भूखे ना रह जाए॥

बहन कुसुम माहेश्वरी जी

भगवान ने गीता के अध्याय 17 में तीन प्रकार के तप बताये हैं –

1. **वाणी का तप** – जो किसी को उद्वेग न करने वाला हो, मीठा बोलने वाला हो, सत्य और प्रिय बोलने वाला हो। वाणी से नाम जप करना है। वाणी का यह तप है, साधक अपनी वाणी और विचारों को संयमित करने का प्रयास करता है।
2. **मन का तप** – मन से प्रसन्न रहना ही मन का तप है। मन से दूसरे के गुणों का चिन्तन करना है। मन को साधना है। सौम्य भाव, भावों की शुद्धि, जब हम भगवान से जुड़े रहेंगे तो प्रसन्न रहेंगे। मनन करना जो पड़े उसका मनन करें। हमें जागरूक रहना है कि मन कहाँ जा रहा है। पदार्थ, क्रिया, भाव को भगवान से जोड़ना। उद्देश्य अपना याद रखना।
3. **शरीर का तप** – शरीर से सब की सेवा करें, सब से प्रेम करें, सभी कर्तव्य कर्म भगवान से जुड़ कर करें।

बहन मुखलेश जायसवाल जी

गीता के नौवें अध्याय के 29वें श्लोक में भगवान बताते हैं –

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

मैं सब भूतों में सम भाव से व्यापक हूँ, ना कोई मेरा अप्रिय, और न प्रिय है। परन्तु जो भक्त मुझको प्रेम से भजते हैं, वह मुझ में हैं। और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ।

चींटी से हाथी तक मैं सब में हूँ। भगवान कहते हैं, मैं इस संसार में तुम्हें अपने में मिलाने के लिये लाया हूँ। भगवान में लिप्त रहने से हमारे अवगुण कम हो जाते हैं। हमारे चाचा जी ने जो बगिया लगाई भैया जी ने उस को आगे बढ़ाया, जो अभी तक फल फूल रही है।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

भाई जगत सिंह जी

मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति है. जिस तरह विद्यार्थी विद्या अध्ययन को जाता है, उसका परम उद्देश्य विद्या प्राप्त करना है।

बिनु सत्संग विवेक न होई।
राम कृपा बिन सुलभ न होई॥

मन सभी को मिलता है, विवेक और बुद्धि तो सत्संग से ही जागृत होगी। सुख और दु:ख से सदैव परेशान रहते हैं, लेकिन सुख-दु:ख क्या है? मेरे मनोनुकूल हो तो सुख, प्रतिकूल हो तो दुख।

देह धरे का दंड है सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगते ज्ञान से मूर्ख भुगते रोय॥

हमें अपने व्यवहार को जाँचना चाहिए, हमारी व्यावहारिक साधना है।

बहन कमला वर्मा जी

रामायण में तुलसीदास जी लिखते हैं –

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह विश्रामु॥

हमारी साधना बहुत सरल है। घर के सभी काम करते हुए अगर हम भगवान की याद बनाये रखते हैं तो तीव्रता से आगे बढ़ते हैं। इसके लिये विश्वास, दृढ़ता और पुरुषार्थ चाहिये।

1. **विश्वास** – विश्वास हमें गुरुदेव पर होना चाहिए, राम नाम पर, स्वामी जी की पद्धति पर। अपने को बदलने के लिये राम नाम के अलावा दूसरा साधन तो मैं जानता ही नहीं हूँ, ऐसा कहते हैं स्वामी जी।
2. **दृढ़ता** – अपने साधन भजन में दृढ़ता हो। प्रतिकूल परिस्थिति में समान रूप से साधना करें, अपने मार्ग से भटके नहीं।
3. **पुरुषार्थ** – हमें भरपूर पुरुषार्थ करना है। कर्तव्य कर्म करते हुए भजन साधन का समय निकालते रहें।

कर से कर्म करो विधि नाना।
मन राखहु जहाँ कृपा निधाना॥

इसी से ये लोग और परलोक दोनों बन जायेंगे।

बहन सुशीला जायसवाल जी

भगवान ने गीता के 12 अध्याय के श्लोक 6 और 7 में कहा है –

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्पर:।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥

जो भक्तजन सम्पूर्ण कर्मों को मुझ में अर्पण करके मुझ सगुण रूप परमेश्वर को अनन्य भक्ति योग से निरन्तर चिन्तन करते हुए भजते हैं, उन मुझमें चित्त लगाने वाले प्रेमी भक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्यु रूप संसार समुद्र से उद्धार करने वाला होता हूँ।

हमारा उद्देश्य क्या है, किसी को कर्म करते हुए,

1. भगवत अर्पण
2. भगवत अर्थ

1. **भगवत अर्पण** – जो सभी काम करते हुए याद नहीं रहता, कर्म करने के बाद याद आया और हमने भगवान को कर्म अर्पण कर दिया, वह कर्म भगवान का हो गया।
2. **भगवत अर्थ** – जो शुरू से ही कर्म भगवान के लिये करते हैं, उनको पाने के लिये कर्म करते हैं।

शिविर समापन के पूर्व बहन सुशीला जायसवाल जी ने प्रतिभागियों को धन्यवाद देते हुए शिविर को सुचारु रूप से चलाने के लिये गुरु महाराज के प्रति आभार प्रकट किया तथा सहयोगियों के कार्यों की सराहना की और शिविर में भाग लेने वालों को भाग्यशाली बताया।

19 अक्तूबर को आरती भजन के बाद सभी साधकों ने भण्डारे का प्रसाद ग्रहण किया।

21.8.2022 से 8.11.2022 तक के दानदाताओं की सूची

साधकगण अपने दान की राशि चैक द्वारा निम्नलिखित बैंक खातों में जमा करवा सकते हैं।

Swami Ramanand Sadhna Pariwar
Bank of India, Haridwar
A/c No.: 721010110003147
I.F.S. Code: BKID0007210

Swami Ramanand Sadhna Pariwar
Punjab National Bank, Haridwar
A/c No.: 00112010000220
I.F.S. Code: PUNB0001110

कृपा करके जमा करवाई हुई राशि का विवरण एवं अपना नाम और पता तथा PAN या आधार कार्ड नम्बर, पत्र अथवा फोन द्वारा साधना धाम कार्यालय में अवश्य सूचित करें। जिससे आपको रसीद आसानी से प्राप्त हो जायेगी।

– **रवि कान्त भण्डारी,** प्रबन्धक, साधना धाम, मोबाइल: 09872574514, 08273494285

1. श्री दिनेश बहल / सुशीला देवी चैरिटेबल ट्रस्ट, गुरुग्राम	500000
2. गुप्तदान	100000
3. श्री आविष्कार मेहरोत्रा, गुरुग्राम	100000
4. श्रीमती गरिमा जोशी, दिगोली	100000
5. श्री हिमांशु गुप्ता सुपुत्र श्री आर.सी. गुप्ता, गाजियाबाद	100000
6. श्री सुरेन्द्र कुमार अग्रवाल, बीसलपुर	100000
7. श्रीमती उर्मिला मिश्रा/श्री अनिल मुंशीलाल, साधना परिवार अहमदाबाद	21000
8. श्री सन्दीप कुमार भदौरिया, साधना परिवार अहमदाबाद	20000
9. मैसर्स ओम टेक्नो, साधना परिवार अहमदाबाद	20000
10. श्री सन्दीप कुमार भदौरिया, साधना परिवार अहमदाबाद	20000
11. श्री नवीन नन्द्राजोग, नई दिल्ली	11000
12. श्रीमती रेखा, नन्द्राजोग, नई दिल्ली	11000
13. श्री राजीव अरोड़ा, नई दिल्ली	11000
14. श्री पुष्पा राज सिंह, नोएडा	11000
15. श्री राजन धाम, नई दिल्ली	11000
16. श्री राजेन्द्र कुमार गुप्ता, दिल्ली	11000
17. देप येलहंका, ऑनलाइन	11000
18. श्री सुनील कान्त अग्रवाल, पीलीभीत	11000
19. श्री दिनेश बहल, गुरुग्राम	11000
20. श्री दिनेश बहल, गुरुग्राम	11000
21. श्री राम कृपाल कटियार, तिलहर	11000
22. श्रीमती जेनी मेहरोत्रा, गुरुग्राम	10100
23. श्री विजय गुलाटी, नई दिल्ली	10000
24. श्री संजीव सेठ, नई दिल्ली	10000
25. श्रीमती सुनीति अग्रवाल, पीलीभीत	6000
26. श्री सुधीर कान्त अग्रवाल, मेरठ	6000
27. श्रीमती आशा टण्डन / चन्द्र किशन, दिल्ली	6000
28. श्रीमती लीला गुप्ता, बंगलुरु	6000
29. श्री सत्य नारायण गुप्ता, बंगलुरु	6000
30. साहनी, ऑनलाइन	6000
31. श्री चन्द्र प्रकाश गुप्ता, बरेली	5100
32. श्री सुधीर कान्त अग्रवाल, मेरठ	5100
33. श्रीमती उषा अग्रवाल / लेफ्टिनेंट श्री कृष्ण कुमार अग्रवाल, बीसलपुर	5100

(शेष अगले पृष्ठ पर...)

(पिछले पृष्ठ से...)

34. श्री सुधीर कान्त अग्रवाल, मेरठ	5100
35. श्री वीरेन्द्र अग्रवाल, बिजनौर	5100
36. श्री राजन धामी, बरेली	5100
37. श्री रवि कान्त अग्रवाल, बरेली	5100
38. श्री अजय आनन्द, गाजियाबाद	5100
39. श्री शिवम अग्रवाल, फरीदाबाद	5100
40. ऑनलाइन	5100
41. श्री हरपाल सिंह राजपूत, हरिद्वार	5000
42. श्रीमती सुनीति अग्रवाल, पीलीभीत	5000
43. श्री सतेन्द्र नेगी, अहमदाबाद	5000
44. सुश्री प्रिया अरोड़ा, अमृतसर	5000
45. मैसर्स एस एम इण्डस्ट्रीज, कानपुर	5000
46. श्री गिरधारी पोरवाल, दिल्ली	5000
47. श्री विश्व मोहन सक्सेना, ऑनलाइन	5000
48. श्रीमती कुसुम सिंह / सत्यम, कानपुर	5000
49. मैसर्स ओम टेक्नो, ऑनलाइन	5000
50. श्री नितेश मोहन, बरेली	5000
51. श्री गौरी शंकर, ऑनलाइन	5000
52. श्री अनिल कुमार, ऑनलाइन	5000
52. ऑनलाइन	5000
53. श्रीमती मधु कपूर, ऑनलाइन	5000
54. श्रीमती मधु खुल्लर, गुरुग्राम	3100
55. श्री शाश्वत नैय्यर, लुधियाना	3100
56. श्री सुशील कुमार गुप्ता, तिलहर	3100
57. श्रीमती रीता शर्मा/चन्दन शर्मा, कानपुर	3100
58. श्री आनन्द गुप्ता, कानपुर	3100
59. श्री अविनाश अरोड़ा, दिल्ली	3100
60. ऑनलाइन	3100
61. डॉ. के.डी. सिंह, शाहजहांपुर	3000
62. श्री विष्णु अग्रवाल, बरेली	2500
63. श्रीमती शशि अग्रवाल, हरिद्वार	2500
64. श्रीमती रजनी लड्डा, मिर्जापुर	2500
65. श्री विष्णु अग्रवाल, बरेली	2500
66. श्री एस.एन. गुप्ता, बंगलुरु	2500
67. डॉ. के.डी. सिंह, शाहजहांपुर	2500
68. श्रीमती शशि अग्रवाल, हरिद्वार	2500
69. श्री सूरज भान सक्सेना, कानपुर	2200
70. श्री सूरज भान सक्सेना, कानपुर	2200
71. श्री दिनेश कुमार, पीलीभीत	2100
72. श्री प्रतीक दीक्षित, शाहजहांपुर	2100
73. श्रीमती सुनीति अग्रवाल, पीलीभीत	2100
74. डॉ. आकांक्षा अग्रवाल, मेरठ	2100
75. श्रीमती मधु गोयल, काशीपुर	2100
76. श्रीमती दीपा गर्ग, फरीदाबाद	2100
77. श्रीमती सरस्वती सिन्हा, तिलहर	2100
78. श्रीमती पूनम जायसवाल, कानपुर	2100
79. श्री मोहनलाल मिश्रा, बरेली	2100
80. श्रीमती पुष्पा गौर, कानपुर	2100
81. श्री चन्द्र प्रकाश गुप्ता, बरेली	2100
82. श्री काशी नाथ शर्मा, कानपुर	2100
83. श्री राकेश साहू / सुश्री रिषिका साहू, झाँसी	2100
84. ऑनलाइन	2100
85. ऑनलाइन	2100
86. ऑनलाइन	2100
87. श्री संजय, ऑनलाइन	2100
88. श्री कृष्ण एस. राठौर, ऑनलाइन	2001

इसके अलावा श्रीमती रेवा भाम्बरी जी ने sadhnaparivar.in नाम के वेबसाइट का एक वर्ष के लिये नवीनीकरण भी कराया।

दिसम्बर 2022 में साधना-धाम में होने वाले कार्यक्रम

माँ सुमित्रा जी का निर्वाण दिवस व जन्म दिवस

6 दिसम्बर 2022 को प्रातः 10 बजे रामायण-पाठ प्रारम्भ होगा।

7 दिसम्बर 2022 को माँ सुमित्रा जी का निर्वाण दिवस है, अतः प्रातः जाप के पश्चात् गंगा के पावन तट पर माँ जी को श्रद्धांजलि अर्पित की जायेगी। प्रातः 10 बजे रामायण-पाठ की पूर्ति होगी। दोपहर 12 बजे भण्डारा होगा जिसमें ब्राह्मणियों को भोजन कराकर दक्षिणा दी जायेगी। तत्पश्चात् प्रीतिभोज होगा।

8 से 14 दिसम्बर 2022 तक प्रतिदिन अखण्ड जाप होगा।

14 दिसम्बर 2022 को माँ सुमित्रा जी का जन्म दिवस मनाया जायेगा एवं प्रसाद वितरण होगा।

पूज्य गुरुदेव स्वामी रामानन्द जी का जन्म दिवस साधना-शिविर

14 दिसम्बर 2022 को प्रातः 9 बजे से रामायण-पाठ प्रारम्भ होगा।

15 दिसम्बर 2022 को अपराह्न रामायण-पाठ की पूर्ति होगी। सायं 6 बजे अखण्ड जाप प्रारम्भ होगा।

16 दिसम्बर 2022, शुक्रवार

सामूहिक जाप	प्रातः 5.30 बजे
हवन	10.00 बजे
ब्रह्मभोज	12.00 बजे
जन्म महोत्सव	2.00 बजे
भजन सन्ध्या	6.00 बजे

17 दिसम्बर 2022, शनिवार

सामूहिक जाप	प्रातः 5.30 बजे
स्वामी जी के संस्मरण एवं अनुभूतियाँ	9.30 बजे

18 से 21 दिसम्बर 2022 - तीन रात्रि का विशेष साधना शिविर।

साधना परिवार की कार्यकारिणी की बैठक 17 दिसम्बर 2022 को साधना-धाम के कार्यालय में होगी। एजेण्डा उसी समय प्रस्तुत किया जायेगा।

नववर्ष का स्वागत कार्यक्रम

31 दिसम्बर 2022 रात्रि 12 बजे विशेष कार्यक्रम में नववर्ष का स्वागत एवं पूज्य गुरुदेव का आशीर्वाद प्राप्त किया जायेगा। कृपया इस कार्यक्रम में भाग लेकर आने वाले नव वर्ष के लिये शुभाशीर्वाद प्राप्त करें।

अध्यक्ष श्री विष्णु कुमार गोयल, उपाध्यक्ष श्री अनिल कुमार मित्तल, श्री संजय सेखड़ी, श्री पुरन्दर तिवारी और वास्तुकार (Architect) श्री अर्जुन सचदेव, दिगोली धाम में रसोईघर व भोजनालय का निर्माण आरम्भ करने हेतु भूमि पूजन करते हुए

राम राम जी

आओ 16 दिसम्बर 2022 शुक्रवार को साधना धाम में

पूज्य गुरुदेव स्वामी रामानन्द जी का जन्म दिवस

सब मिलकर हर्षोल्लास के साथ मनायें ।

सभी साधकों से प्रार्थना है कि अपने व्यस्त जीवन से दो दिन का समय निकालकर परिवार सहित आकर इस उत्सव का आनन्द उठायें और स्वामी जी का आशीर्वाद प्राप्त करें ।